दो शब्द

हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है। विरोध और बाधाओ के होते हुए भी हिन्दी अपने उचित स्थान पर आसीन होती जा रही है। हाई स्कूल और माध्यमिक परीक्षा के सभी विद्यार्थियो के लिए चाहे वे साहित्य के हो और चाहे विज्ञान के हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य हो गया है। राष्ट्रभाषा के साहित्य की मोटी मोटी बाते जानना हमारी शिक्षा और सस्कृति का एक अग हो गया है। प्रस्तुत इतिहास मे ब्युरे की अपेक्षा साहित्य के विकास-क्रम की ओर अधिक ध्यान दिया है किन्तु ब्युरे की भी नितान्त उपेक्षा नही की गई है। उतना ब्युरा अवश्य दिया गया जितना काल की प्रवृत्तियो के समझने के लिए आवश्यक है। प्रत्येक युग की गति विधि के ज्ञान के साथ कवियो की भी प्रवृतियाँ भी दी गई है। जिससे कम से कम युग निर्माता कवियो की कृतियो और उनकी साहित्यिक विशेताओ से परिचय हो जाय। मेरे बडे इतिहास मे भी प्राय यही दृष्टिकोण रखा गया है किन्तु उसमे कवियो की सख्या और उनका अध्ययन भी कुछ ब्युरेवार है। हिन्दी के विद्यार्थियो की बढती हुई सख्या को देखकर यह आवश्यक समझा गया कि जो विद्यार्थी अधिक खर्च कर सकते है वे भी अपनी भाषा के इतिहास से परिचय हो जाय। इसलिए इसका मूल्य ऐसा रखा गया है जो हर एक विद्यार्थी की पहुँच के भीतर हो और लाभ उठा सकें। यदि विद्यार्थी लोग इसके द्वारा हिन्दी साहित्य के विकास क्रम से परिचय प्राप्त कर अपनी रुचि और अध्ययन को बढाने का प्रयत्न करेगे तो मै अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा। इस पुस्तक का पाँचवा सस्करण थोडे-बहुत सशोधन और परिवर्द्धनो के साथ आप लोगो के हाथ मे पहुँच कर रहा है।

गोमती निवास
दिल्ली दरवाजा
आगरा
१ १० ५८

गुलाबराय

❀ विषय-सूची ❀

अध्याय १

हिन्दी साहित्य का काल-विभाग

हिन्दी देश की राष्ट्र भाषा है। इसको संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का उत्तराधिकार मिला है। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसके अन्तर्गत, राजस्थानी, ब्रज-भाषा, अवधी, मैथिली और खडी बोली आती है। इन सब उपभाषाओ के ग्रथ इसके इतिहास का विषय बनते हैं। राजस्थानी के चन्द बरदाई, ब्रजभाषा के सूर, देव, मतिराम और बिहारी, अवधी के जायसी और तुलसी, मैथिली के विद्यापति और खडी बोली के प्रसाद, पत, निराला पर हिन्दी को गर्व है। हिन्दी साहित्य का विकास धीरे-धीरे हुआ है। उस पर राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियो का प्रभाव पड़ा है। साहित्य का इतिहास कवियो का नाम परिगणन या इतिवृत्त मात्र नही है। उनमे प्रवृतियो का भी अध्ययन शामिल है। वे प्रवृतियाँ कवि को बनाती है और कवि इनको बनाते है। दोनो का पारिस्परिक आदान-प्रदान होता है। इसी दृष्टि से हम साहित्य के इतिहास का अध्ययन करेगे।

इतिहास का अध्ययन

हिन्दी साहित्य का इतिहास चार कालो मे विभाजित किया जाता है। वे इस प्रकार है

चार काल

१ आदि काल (वीरगाथा या चारणकाल संवत् १०५० से १३७५।)

२—पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल या धार्मिककाल सवत् १३७५ से १७००)।

३—उत्तर मध्यकाल —(रीतिकाल, संवत् १७०० से १६००)।

४ आधुनिककाल (स्वातन्त्र्यकाल संवत् १६०० से आज तक)।

यह विभाग बहुत मोटा विभाग है। जिस साहित्यिक प्रवृत्ति का जिस काल मे प्राधान्य रहा उसी के नाम से वह काल प्रसिद्ध है। वैसे तो आजकल भी राम भक्ति और कृष्ण भक्ति की परम्परा चल रही है और एक प्रकार से वीर काव्य भी लिखा जा रहा है किन्तु वर्तमान काल को भक्ति काल या वीरगाथा काल नही कह सकते। यह विभाजन आचार्य शुक्लजी के अनुसार है। उन्होने वर्तमान काल को गद्य-काल कहा है। इस काल मे गद्य का प्राचुर्य अवश्य है। किन्तु इस काल की कविता भी कम महत्वपूर्ण नही है। इस काल की कविता मे छन्दो और नियमो की स्वतन्त्रता की ओर अधिक प्रवृत्ति रही। गद्य मे भी स्वभावत. स्वतत्रता की ओर प्रवृत्ति है।

आदि-काल

(अपभ्रन्श काव्य)

प्रारम्भ

प्राकृत का उत्तराधिकार अपभ्रंश को मिला, वह भी बोल-चाल की भाषा से साहित्यिक भाषा बन गई और बोल-चाल की भाषा प्रातीय भेद से आधुनिक भाषाओ का रूप धारण करने लगी। हिन्दी साहित्य का वास्तविक रूप कब आरम्भ हुआ, यह कहना कठिन है। जो वस्तु विकसित होती है उसके लिए यह कहना बड़ा दुष्कर होता है कि वह कब एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे पहुँच गई। हिन्दी के लिए यह भी कहना सहज नही है कि कब वह अपभ्रंश की अवस्था से प्राचीन हिन्दी की अवस्था मे पहुँची। यद्यपि हिन्दी का आदि-काल संवत् १०५० के लगभग आरम्भ होता है तथापि शिवसिंह ने जनश्रुति के आधार पर उसका आरम्भ सवत् ७७० मे भोज के पूर्वज राजा मान के सभासद पुष्य नाम के किसी कवि से माना है। इसका ग्रन्थ अलंकार सम्बन्धी कहा जाता है किन्तु उसका कोई पता नही लगता।

सिद्ध साहित्य

कुछ लोग हिन्दी का आरम्भ सिद्ध साहित्य से मानते है। ये सिद्ध लोग बौद्ध धर्म की वज्रयानी शाखा के थे। इनकी सख्या ८४ मानी जाती है। इनमे सबसे पुराने सहपा (सरोज वज्र) नाम के सिद्ध हैं जिनका समय सवत् ६९० बताया जाता है। इनकी रचना का एक नमूना नीचे दिया जाता है

जहि मन पवन न संचरई, रवि ससि नाहिं पवेस।
तहि बट चित्त विसाम करु सरेहे कहिअ उवेस॥

इन सिद्धो का दो तरह से हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा पर प्रभाव पड़ा। इनकी अटपटी सध्या भाषा को कबीर ने अपनी उलट-वासियो मे अपनाया और इनकी प्रतिक्रिया मे उठे हुए नाथ-पंथ के हठयोग और रहस्यवाद को भी कबीर ने अपनाया था। गोरखनाथ इन्ही सिद्धो मे से थे किन्तु इन्होने वज्रयान की अमर्यादित विलास-वासना से अपने को अलग रक्खा था और हठयोग का प्रवर्तन किया था। गोरखनाथ को कुछ लोग दशमी शताब्दी मे मानते है और कुछ लोग तेरहवी के। कबीर की गगा स्नान आदि के विरुद्ध जो उक्तियाँ है वे भी नाथ-पथ से आई प्रतीत होती है।

जैन आचार्यो ने अपना बहुत-सा साहित्य अपभ्रंश मे लिखा है, उसमे हमको हिन्दी का पूर्वरूप मिलता है। जैनाचार्य हेमचंद ने सिद्ध हेमचंद शब्दानुशासन नाम के व्याकरण ग्रन्थ मे एक दोहा दिया है जो हिन्दी के बहुत निकट आता है

जैन साहित्य

भल्ला हुआ जु मारिया वहिणि महारा कंतु।
लज्जेज तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु॥

जैन आचार्यो मे सोम प्रभु सूरि जिन्होने सवत् १२४१ मे कुमार पाल प्रतिवोध नाम का एक गद्य पद्यमय संस्कृत-प्राकृत-काव्य लिखा था, जैन आचार्य मेरुतुङ्ग जिन्होने १३६१ मे प्रबंध चिंतामणि नाम का एक सस्कृत ग्रन्थ लिखा था, आदि प्रसिद्ध है। अपभ्रंश काव्य मे शार्गधर का नाम और उल्लेखनीय है। इनके काव्य मे देश भाषा के भी उदाहरण मिलते हैं। इन्होने शार्गधर पद्धति नाम का एक सुभाषित ग्रन्थ बनाया और हम्मीररासो नाम के एक वीरगाथा काव्य की भी रचना की थी।

विद्यापति (१४०७) की कीर्तिलता और कीर्तिपताका भी अपभ्रंश के अन्तर्गत समझी जाती हैं। हिन्दी के विकास के सम्बन्ध मे हमको यह समझ लेना चाहिए कि जैसे-जैसे हिन्दी का विकास होता गया वह प्राकृत और अपभ्रंश से मुक्त होती गई और संस्कृत

के तत्सम शब्दों को अपनाती गई। विद्यापति की अपभ्रंश रचनाओं मे देश भाषा का रूप कुछ अधिक है।

देश भाषा का काव्य

अपभ्रंश काव्य के पश्चात् देश भाषा काव्य को स्थान मिला।

वीरगाथा काल की राजनीतिक परिस्थितियाँ

प्रारम्भिक काल मे परिस्थितियों के अनुकूल वीरगाथा काव्य की रचना हुई। संक्षेप मे उन दिनो की परिस्थिति यह थी कि देश छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित था; उनके अधिकारी राजा और उनके आश्रित कविगण छोटे से राज्यो को ही राष्ट्र समझते थे। इन राज्यो की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता भी चलती रहती थी। कनौज और दिल्ली की प्रतिद्वन्द्विता प्रसिद्ध है। इन प्रतिद्वन्द्विताओ के कारण ही मुसलमानो को अपने आक्रमण मे सफलता मिली। राजा लोग आपस मे झगडो मे ही क्षीण-बल हो गये थे और वे बाहरी आक्रमणो का मुकाबिला करने मे असमर्थ रहे। उन दिनो युद्धो का साम्राज्य हो गया था; आपस के युद्धो के साथ-साथ बाहर के आक्रमणो का भी मुकाबला करना पडता था। आपस के युद्ध प्राय. राजपूती शान रखने के लिए अथवा किसी रमणी की परित्राण के लिए होते थे। कवि लोग अपने आश्रयदाताओ का यशगान करने मे और उनको प्रोत्साहन देने मे आनन्द लेते थे। वे लोग लेखनी के शूर ही नही होते थे वरन् समर शूर भी होते थे। पृथ्वीराज रासो के कर्ता चन्दवरदाई ऐसे ही कवि थे। इन ही युद्ध की परिस्थतियो मे वीरगाथा-काव्य का जन्म हुआ।

विशेषताएँ

उसकी विशेषताएं इस प्रकार थी

(१) आश्रित कवियो द्वारा आश्रयदाताओ की जी खोल कर प्रशसा।

(२) वीर-रस के साथ शृङ्गार का पुट क्योंकि युद्ध प्राय किसी रमणी के परित्राण के लिए होते थे और उसके नख-शिख आदि का भी वर्णन आता था।

(३) युद्धों के सुन्दर, सजीव और गतिमय वर्णन जिनमे उद्दीपन रूप से अस्त्र-शस्त्रों और हाथी-घोडो का भी उल्लेख होता था।

(४) कल्पना का प्राचुर्य, इसी कारण उनमें इतिहास की अपेक्षा काव्य की मात्रा अधिक हो जाती थी।

(५) इन ग्रन्थो मे वीर रस के अनुकूल ओजमयी डिंगल भाषा का प्रयोग होता था।

रासो ग्रन्थ

वीरगाथा काव्य प्रबन्ध-काव्य के रूप मे भी मिलता है और वीर गीतो के रूप में भी। यह ग्रन्थ रासो के नाम से प्रसिद्ध है। रासो का सम्बन्ध रसायन ('नाल्ह रसायण आरंभई सारदा तूठी ब्रह्म-कुमारि') और कही कही रास (आनन्द) से लगाया जाता है (रास प्रगासी बीसल दे राय) तासी ने रासो की उत्पत्ति राजसूर्य से बताई है।

प्रबन्ध काव्य रूप मे आए हुए रासो ग्रन्थो मे 'खुमान रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' प्रसिद्ध हैं। 'खुमान रासो' दलपत विजय का बनाया हुआ ग्रन्थ है इसमे चित्तौड के दूसरे खुमान (८७०-९००) के युद्धो का वर्णन है इसमे पीछे के राजाओं का भी वर्णन है। इससे ठीक नही कहा जा सकता कि दलपत विजय का लिखा हुआ मूल ग्रन्थ कितना है।

पृथ्वीराज रासो

यह हिन्दी का आदि महाकाव्य माना जाता है। इसमे छप्पय, कवित्त, दोहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या छन्दो का प्राचुर्य पाया जाता है। इस ग्रन्थ मे ६९ समय अर्थात् अध्याय हैं। रासो मे आबू के अग्निकुण्ड से क्षत्रियो के चार कुलो की उत्पत्ति से लगाकर पृथ्वीराज के पकडे जाने तक का सविस्तार वर्णन हुआ है। इन वर्णनो मे पृथ्वीराज के युद्धो और विवाहो को मुख्यता मिली है। इस ग्रन्थ के रचयिता श्री चन्दवरदाई (स० १२२५-१२४९) माने जाते

हैं। ये महाकवि ब्रह्म भट्ट जाति के अन्तर्गत जगात गोत्र के थे। ये महाराज पृथ्वीराज के अनन्य मित्र थे। कहा जाता है कि पृथ्वीराज और इनका जन्म एक ही तिथि को हुआ था और मृत्यु भी साथ ही साथ हुई थी। यह भी कहा जाता है कि इनके ही इशारे पर पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन गौरी को शब्दभेदी वाण मारा था और उसके पश्चात् और स्वयं पृथ्वीराज ने अपना तथा अपने सखा और सामन्त चन्द का प्रणान्त कर दिया था। इस प्रकार चन्द ने पृथ्वीराज के साथ पूर्ण सखा-भाव निभाया था, चन्द ने गजनी जाने से पहले रासो को अधूरा छोडकर अपने पुत्र जल्हन को उसके पूरा करने का कार्य सौप दिया था। रासो मे इसका उल्लेख नीचे की पंक्ति मे हुआ है।

'पुस्तक जल्हन हत्य दै, चलि गज्जन नृप-काज'

प्रामाणिकता

साहित्य वाचस्पति स्वर्गीय श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी ने इस ग्रन्थ की प्रमाणिकता मे सदेह किया है, इसमे वर्णित घटनाएँ और सन्-संवत् जयानक के सस्कृत ग्रन्थ पृथ्वीराज विजय और ऐतिहासिक शिला लेखों से नही मिलते है। पृथ्वीराज रासो मे पृथ्वीराज की माता का नाम कमला दिया गया है किन्तु पृथ्वीराज विजय मे उसका नाम कपूरदेवी है। पृथ्वीराज रासो मे दी हुई सयोगिता स्वयंवर की बात भी और किसी शिलालेख से पुष्टि नही होती है रासो में फारसी अरबी शब्दो का भी बाहुल्य है। रासो मे दिए हुए सन्-सवत् इतिहास के सन् सवत् से नही मिलते। सन् सवतो की सगति बैठालने के लिए प० विष्णुलाल पण्डया ने आनंद संवतो की कल्पना की थी। पण्डयाजी का कहना है कि विक्रमी सवत् मे से ९० वर्ष (अ=० नन्द=९) घटाने से सवत् ठीक बैठ जाता है। पण्डयाजी की कल्पना दो एक सवतो के सम्बन्ध मे ठीक बैठती है। अन्य असंगतियो की व्याख्या इस कल्पना से भी नही हो पाती किन्तु यह गड़बड़ी प्रक्षिप्त अंशो के कारण हो सकती है।

प० दशरथ शर्मा ने एक ऐसे संस्करण का उल्लेख किया है जिसमे ये असंगतियाँ न्यूनतम रूप मे दिखाई पड़ती है। मुनि जिन विजय सूरि को अपने अपभ्रंश के ग्रन्थो के अध्ययन मे चार छन्द ऐसे मिले है, जिनमें से दो रासो के अनुवाद प्रतीत होते हैं। इन सब बातो से राय बहादुर श्यामसुन्दरदास जी तथा अन्य विद्वानो का मत है कि रासो पृथ्वीराज का ही लिखा है किन्तु उसका मूल रूप वर्तमान रूप से बहुत छोटा होगा। यह नही मालूम है कि कितना अश प्रक्षिप्त है। रासो की भापा मे कई स्तर की भाषा मिलती है, कुछ नवीन और कुछ प्राचीन, इसका भी यही कारण है कि उसमें प्रक्षित अंश बहुत है। इसके अतिरिक्त अरबी, फारसी के शब्दों का होना कोई आश्चर्य-जनक नही क्योकि मुसलमानो के आक्रमण दो सौ वर्ष से आरम्भ हो गए थे। रासो ऐतिहासिकता की कसौटी पर चाहे खरा न उतरे किन्तु काव्य सौष्ठव मे भावो की सुकुमारता और अलकार योजना की उपयुक्तता के कारण बहुत उच्चकोटि का काव्य ग्रन्थ है।

उदाहरण

कुट्टिल केस सुदेश पौह परिचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय-संध, हस गति चलत मंद मंद॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नप स्वाति-बुन्द जस।
भ्रमर भवहि भुल्लहि सुभाव मकरन्दवास रस॥
नयन निरषि सुप पाय सुक यह सुदिव्य मूरति रचिय।
—उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय॥

(कुट्टिल=घुँघराले, सुदेश=सुन्दर। पौह=गुथे हुए, पिक=पक्का, मोतियो की लडी, सेत=सफेद)।

मुक्तक वीर काव्य मे वीसलदेव रासो और आल्ह खण्ड को बहुत ख्याति मिली है। वीसलदेव रासो के रचियता नरपति नाल्ह हैं और इसमे वीसल देव (विग्रहराज चतुर्थ) का चरित्र वर्णित है।

वीसलदेव रासो

इसका रचना काल संवत १०१२ मे माना जाता है। डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने बारह सौ वहोत्रा मझार का अर्थ १२७२ माना है और शुक्ल जी के मत से बहोत्रा का अर्थ द्वादशोत्तर अर्थात् १२ ऊपर होता है। इसमे वीर रस की अपेक्षा शृगार रस को अधिक आश्रय मिला है। कुछ लोग इसके वीर काव्य कहे जाने मे भी आपत्ति करते है किन्तु वीरों के चरित्र से सम्बन्धित होने के कारण इसको वीर-काव्य मे स्थान मिलना उचित समझा जाता है।

आल्हा-खण्ड

प्रचार की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है किन्तु इस काव्य का वर्तमान रूप इसके प्राचीन रूप से जो उपलब्ध नही है, बहुत भिन्न बतलाया जाता है। इसका वर्तमान रूप प्राचीन गीतो के आधार पर रचा हुआ है। इस ग्रन्थ के मूल कर्ता जगनीक है (संवत् १२३० मे यह महोवे के परमाल परमार्दिदेव के राजकवि थे। परमाल जयचन्द के पक्ष के थे। और उनकी भी पृथ्वीराज से लडाई रहती थी। इसमे मुख्य आल्हा, उदल (उदयसिह) नाम के बनाफर वीरो की वीर कृतियो का वर्णन है। आल्हा खण्ड का जो वर्तमान रूप है उसमे लोक-प्रियता के गुण अधिक हैं।

मीर खुसरो

आदि काल मे वीर काव्य के अतिरिक्त और भी स्फुट भाषा काव्य लिखा गया। इन लेखको मे खुसरो, विद्यापति और गुरु गोरखनाथ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मीर खुसर (स० १३१८ १३८२) की रचनाओ मे दिल्ली के आस-पास की खडी बोली का रूप दिखाई पडता है। उसमे ब्रजभाषा की ओर भी थोडा झुकाव है। खुसरो ने बोलचाल की भाषा को अपना कर अपनी पहेलियो और कहमुकरियो के द्वारा जनता का अच्छा मनोरंजन किया। उनकी भाषा से यही प्रमाणित होता है कि खडी बोली का अस्तित्व उर्दू के जन्म से पहले था।

उदाहरण

कहमुकरी

जब मेरे मन्दिर में आवे।
सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अक्षर,
ऐ सखि साजन ? ना सखि मच्छर।

× × ×

वह आवे तब शादी होय,
उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे उसके बोल,
ऐ सखि साजन ? ना सखि ढोल।

पहेली

एक थाल मोती से भरा,
सब के सिर पर औंधा धरा।
चारो ओर वह थाली फिरे,
मोती उससे एक न गिरे॥ 'आकाश'

× × ×

ना मारा ना खून किया।
मेरा सिर क्यो काट लिया॥ 'नाखून'

× × ×

श्याम वरण और दाँत अनेक।
लचकत जैसे नारी॥
दोनो हाथ से खुसरो खींचे।
और कहे तू आरी॥ 'आरी'

विद्यापति

ये महाकवि संवत् १४६० मे तिरहुति के राजा शिवसिंह के यहाँ रहते थे और इनके पदो मे राजा शिवसिंह और रानी लखिमादेवी का स्थान-स्थान पर उल्लेख आया है।

राजा शिवसिह रूप नरायन ।
लखिमादेइ रमाने ॥

गीत काव्यकारो मे विद्यापति का बहुत ऊंचा स्थान है। वे मैथिलकोकिल और अभिनव जयदेव के नाम से प्रख्यात है। वैष्णवो मे इनका अधिक मान है। इनकी कविता उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल मे वडी रुचि के साथ पढ़ी जाती है क्योकि इन्होने प्रेम की कोमल भावनाओ को अपने काव्य का विषय बनाया है। यद्यपि इनकी कविता राधाकृष्ण के नाम से सम्बन्धित है तथापि उसमे भक्ति की अपेक्षा पारस्परिक प्रेम का ही अधिक वर्णन है। इसलिए कुछ विद्वान इनको शृगारी कवि ही मानते है और कुछ लोग इनको भक्त कवियो की श्रेणी मे बैठालते है। कुछ लोग जैसे ग्रियर्सन महोदय राधाकृष्ण के प्रेम व्यापार का आध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं। यद्यपि इनकी कविता मे शृगार के भौतिक पक्ष का प्राधान्य है तथापि विरह मे थोड़ा मानसिक पक्ष भी मिला हुआ है। ये महाकवि शिव के उपासक थे, शिव भक्ति की नचारियाँ तो उन्होने बहुत सुन्दर लिखी है किन्तु कृष्ण भक्ति के पदो का नितान्त अभाव नही है।

माधव हम परिनाम निरासा।
तुहुं जगतारन दीन दयामय आतए तोहर विसवासा।

उदाहरण

नन्द क नन्दन कदम्ब क तरुतर धिरे धिरे मुरली बजाव।
समय सकेत-निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव॥
सामरि, तोरा लागी अनुखन विकल मुरारि।
जमुना क निर उपवन उदवेगल फिर फिर ततहि निहारि॥
गोरस बचत अवइत जाइत जनि जनि पुछ वनमारि।
तोहे मतिमान सुमति, मधुसूदन बचन सुनह किछु मोरा।
भनई विद्यापति सुन बरजौवति वन्दह नन्द किसोरा॥

× × ×

इनका समय विक्रम की तेरहवी शताब्दी माना जाता है। इन्होने बौद्ध मत की वज्रयानी शाखा के स्वच्छन्दतावाद का विरोध कर संयम और सदाचार की स्थापना की थी। इनकी रचनाओ मे हठयोग का भी प्रतिपादन हुआ है। इन्होने साम्य भाव का प्रचार किया था और इस प्रकार इनकी कविता मे कबीर के विचारो की आधार-शिला मिलती है। जहाँ कबीर मे इनके विचारो की पुष्टि हुई है। वहाँ सूर और तुलसी मे इनके विचारों की प्रतिक्रिया दिखाई देती है।

गुरु गोरखनाथ

'तुलसी अलखहिं का लखै, राम नाम जपु नीच'

इस प्रकार गोरखनाथ ने भावी साहित्य को किसी न किसी रूप मे प्रभावित किया है और उनका साहित्य के इतिहास मे विशेष महत्व है।

प्राचीन काव्य मे जिस प्रकार गुरु गोरखनाथ के काव्य मे ज्ञानश्रयी शाखा के बीज मिलते है उसी प्रकार 'मुल्लादाऊद' द्वारा रचित कविता काल संवत् १३७५ के लगभग)। नख और चन्दासी प्रेम कहानी मे प्रेमगाथा काव्य के बीज मिलते है। ये अलाउद्दीन के समकालीन थे। इस प्रकार हम देखते है कि हमारे साहित्य की परम्परा बहुत काल पीछे से चली आती है। वीर गाथाकाल के बीज 'भल्ला हुआ जु मरिया' आदि मे अपभ्रंश काव्य मे मिलते हैं और ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाओ के बीज भी आदि-काल मे मिल जाते है।

अध्याय २

भक्ति-काल

सामान्य परिचय और विशेषताएँ :

हिन्दी का आदि काल एक प्रकार से संघर्ष का युग था। उस समय आपस मे संघर्ष था और बाहरी शक्तियो से भी।

परिस्थितियाँ

उस काल मे जो साहित्य रचा गया वह तत्कालीन परिस्थितियो के अनुकूल ही था किन्तु जब मुसलमानो के पैर भारत मे जम गए और अपने को भारत का ही समझने लगे तो दोनो ओर से समझौते की मनोवृति का जन्म हुआ। इधर हिन्दू लोग अपनी राजनीतिक हार की क्षति-पूर्ति के लिए अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाने और भगवान की शरणागति का सहारा लेने के निमित्त आध्यात्मिक की ओर झुके उधर मुसलमान लोगो ने हिन्दू कथाओ का मनसवी रूप मे लिखकर जनता के हृदय के निकट आने का प्रयत्न किया। उन दिनो एक धार्मिक उथल-पुथल मची हुई थी। अनेक दार्शनिकवाद जैसे शङ्कराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद और मध्वाचार्य का द्वैतवाद चल रहे थे इनकी विचार-धारा का प्रभाव साहित्य पर भी पडना स्वाभाविक था। धार्मिक और दार्शनिक विचार जब तक साहित्य मे प्रवेश नही करते तब तक वे पण्डित वर्ग के एकाधिकार की वस्तु बने रहते है और वे साधारण जनता को प्रभावित नही कर सकते। महाराष्ट्र आदि मे भी ज्ञानेश्वर और संत तुकाराम ऐसे ही विचारक और धर्म प्रचारक आविर्भूत हुए। ऐसी ही दार्शनिक और राजनीतिक पृष्ठ-भूमि मे भक्ति-काल का उदय हुआ।

विशेषताएं

यद्यपि भक्ति काल मे चार शाखाये थी, तथापि उस काल मे कुछ ऐसी सामान्य भावनाएँ थी जिनके कारण ये सब धाराएँ एक सूत्र मे बँध सकी और अपना भक्ति-काल का नाम सार्थक कर सकी। ये विशेषताएँ इस प्रकार है .

(१) गुरु को प्राय: भगवान के बराबर ही ऊँचा स्थान देना।
(२) नाम को महत्ता देना।
(३) राजाश्रय का तिरस्कार। केवल जायसी ने मसनवी परम्परा के अनुसार बादशाह वक्त की तारीफ की थी)।
(४) सारे ससार के प्रति मैत्री और निर्विरोध भावना।
(५) आत्म समर्पण की भावना।

चार धाराएँ

(१) भक्ति काल की चार धाराएँ थी। दो धाराएं निराकारोपासना की दो सगुण और साकार की। निराकारोपासको मे कुछ ज्ञान को प्राधान्य देने वाले थे और कुछ प्रेम को प्रधानता देने वाले। सगुणोपासको की भी दो शाखाएं थी। एक राम को मानने वालो की रामाश्रयी शाखा और दूसरी कृष्ण को मानने वालो की कृष्णाश्रयी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि 'संत' कवि कहलाते थे और प्रेम मार्गी प्राय: 'सूफी' कवि थे सगुणोपासक कवियो मे रामाश्रयी और कृष्णश्रयी शाखा के कवि 'भक्त' कवि कहलाते थे।

भक्ति-काल
- निराकारोपासक
  - ज्ञानाश्रयीशाखा (सन्त कवि)
  - प्रेममार्गीशाखा (सूफी कवि)
- साकारोपासक
  - रामाश्रयीशाखा (भक्ति कवि)
  - कृष्णाश्रयीशाखा (भक्ति कवि)
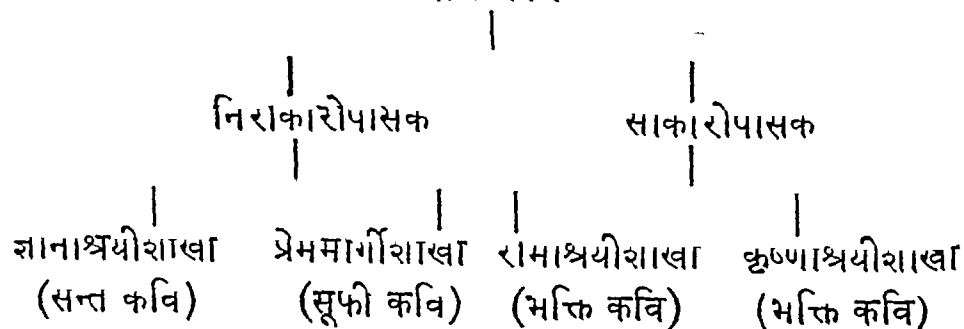
ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियो ने निर्गुण ब्रह्म को अपनाया था। वे लोग भारतीय ब्रह्मवाद के मानने वाले थे।

ज्ञानश्रयी शाखा निर्गुण शाखा का निर्गुण ब्रह्म मुसलमानी एकेश्वरवाद के निराकार ईश्वर के बहुत निकट आ जाता है। मुसलमान लोग मूर्ति-पूजा और अवतारवाद का खण्डन करते थे। निर्गुणवादी इन बातो को न मान कर मुसलमानी खण्डनात्मक प्रचार से बचे हुए थे। ऐसे निर्गुण ब्रह्म के मानने में उनको हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की सम्भावना दिखाई पडती थी। वे राम और रहीम, कृष्ण और करीम को मानते थे। इन सन्त कवियो ने धार्मिक आडम्बर-तिलक छापा और जाति-पाँति, और रोजा नमाज, मन्दिर और मसजिद आदि धर्म के बाहरी प्रतीको का तिरस्कार कर धर्म के भीतरी तत्वो को अपनाया। उन्होने समाचार और ईश्वरोपासना पर बल दिया। 'हरि का भजे सो हरि का होई जाति पाति पूछे नहिं कोई' उन्होने पूर्ण समता भाव का प्रचार किया था। सँक्षेप मे सत कवियो की ज्ञानश्रयी शाखा की मूल प्रवृतियाँ इस प्रकार थी

(१) ये लोग निर्गुणवादी थे और नाम की उपासना को महत्ता देते थे।

(२) ये लोग रूढिवाद और धर्म के दिखावे और आडम्बर के विरोधी थे।

(३) ये लोग गुरु को प्राय: ईश्वर के बराबर महत्ता देते थे।

(४) ये अपने को जाति-पाति के बन्धनो से परे मानते थे।

(५) ये लोग वर्णाश्रम के विषय धर्मों से स्वतंत्र रहकर सदाचार-परायण साधारण धर्म को मानते थे।

(६) इनकी भाषा मे जन हृदय को स्पर्श करने वाली सरलता थी और यह ये लोग कवित्व की अपेक्षा सत्य के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान देते थे।

कबीर

जीवन वृत्ति संवत् १४५५ से १५७५

कबीर यद्यपि नीरू नाम के जुलाहे के घर मे पालित पोषित हुए थे तथापि इनके जन्म के सम्बन्ध में यह जन-श्रुति है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उनकी माता को महात्मा रामानन्दजी का यह वरदान मिला था कि बेटी सौभाग्यवती हो, वह झूठा नही हो सकता था। इनका जन्म उसी ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ। लोक-लाजवश इनकी माता ने अपने नवजात शिशु को एक तालाब के किनारे छोड दिया। पीछे नीरू ने इनका पालन-पोषण किया और बालक का नाम कबीर (अर्थात् बडा) पडा। इनका विवाह लोई नाम की एक स्त्री से हुआ था जिससे इनके एक कमाल और कमाली नाम के दो बच्चे भी थे। कबीर को जुलाहे होने का गर्व था। 'तू बाम्हन, मै काशी का जुलाहा, बूझौ मोर गिआना।' ये अपने घर का काम करते थे किन्तु मन हरिभजन मे लगा रहता था। कबीर का जन्म काशी मे हुआ था किन्तु वे अपने स्वतत्र विचारो के कारण मरने के लिए मगहर चले गये थे उनका कहना था कि यदि काशी मे मरने से मुक्ति होती है तो राम भक्ति से क्या लाभ "जो काशी तन तजै कबीरा तो रामहिं कहा निहोरा रे," उनके शव के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनो ही झगडे थे? कहा जाता है कि अन्त मे उनके शरीर के फूल हो गए थे जो हिन्दू और मुसलमानो ने आधे-आधे बाँट लिए थे।

प्रभाव और सिद्धांत

कबीर ने श्री रामानन्दजी से दीक्षा प्राप्त की थी, 'काशी मे हम प्रगट भये है, रामानन्द चेताए' कबीर पर रामानन्द जी के अतिरिक्त शकराचार्य तथा नाथ पंथी साधुओं का एवा सूफियो का भी प्रभाव था। मुसलमानो के प्रभाव से और कुछ कुछ गुरु गोरखनाथ जी के प्रभाव से उन्होने तीर्थ-यात्रा और अवतारवाद का खण्डन किया

और वैष्णवो के सत्संग के कारण उन्होने भक्ति और जीव-दया का प्रचार किया। कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनो के आडम्बरो पर व्यंग करके दोनो का वर्ग दूर करने की चेष्टा की है 'इन दोउन राह न पाई'। राम को इन्होने दशरथ का पुत्र नही माना है।

"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना"

उन्होने राम के नाम की उपासना की है, शंकराचार्य के प्रभाव से वे संसार और ब्रह्म को एक मानते थे। "खालिक-खलक खलक मे खालिक सब जग रहा समाय।" जीव और ब्रह्म मे वे भेद नही मानते थे। नदी मे रक्खा हुआ घडा यदि फूट जाय तो पानी पानी मे मिल जाता है उसी तरह से ज्ञान होने पर जीव ब्रह्म मे मिल जाता है।

जल मे कुंभ-कुंभ में जल है, बारह भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समानो, यह तत कथो गिआनी॥

इन्होने पूर्ण समता भाव का प्रचार किया।

"एक ज्योति थे सब उपजा, कौन बामन कौन सूदा।

वे सम्प्रदाय भेद नही मानते थे। 'कहे कबीर एक राम जपौ रे हिन्दू तुरक न कोई" कबीर ने पिण्ड मे ही ब्रह्माण्ड मानते हुए हठयोग को अपनाया और शरीर मे ही सूर्य, चन्द्र, गंगा और यमुना के दर्शन कराए। कबीर फक्कड संत थे। वे पढे-लिखे नही थे। "मसि कागद छुओ नही, कमल गही नही हाथ" फिर भी इनके हृदय मे सत्य का प्रकाश था और इस कारण उनकी वाणी मे स्वत ओज आ गया था। उनका मुख्य ध्येय कविता नही था, वरन् अपने सिद्धान्तो का प्रचार था। फिर भी उनकी कविता अलंकारो से शून्य नही रही। उसमे रूपक अन्योक्ति विरोधाभास आदि अलंकार स्वभाव से ही आ गए हैं। यद्यपि इन्होने अपनी भाषा को पूर्वी कहा है। "मेरी बोली पूरबी" तथापि इनकी भाषा सधुक्कडी या खिचडी भाषा है, जिसमे पूर्वी, ब्रजभाषा, राजस्थानी और खडी बोली आदि का सम्मिश्रण है। उनकी तीव्र अनुभूति के कारण उनकी भाषा मे बल आ गया था। इस पचमेल

खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होने दूर-दूर के साधु-संतो का सत्संग किया था जिससे स्वाभाविक रूप से ही उन पर भिन्न-भिन्न प्रान्तो की बोलियो का प्रभाव पडा।

उदाहरण

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद, जु ब्रह्मा एक।
लागत ही मैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक ॥
विरह भुवगम तन बसै, मंत्र ने लागे कोइ।
राम वियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ ॥
जा कारण मै ढूँढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, आगि न सकौ पाइ ॥
जैसी मुष तै नीकसै, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेडा रहै, पल मे करै निहाल ॥
× × × ×

झूठ लोग कहे घर मेरा।
जा घर मांहे बोलै, डोलै, सोई नही तन तेरा ॥टेक॥
वहुत बध्या परिवार कुटुम्ब मै, कोई नही किस केरा।
जीवन आंखि मूँद किन देखौ, ससार अध अंधेरा ॥
नौ मन सूत उरझि नही सुरझै, जनमि जनम उरझेरा।
कहै कबीर एक राम भजहु रे, वहुरि न ह्वै गा फेरा ॥

कबीर पथ आगे चलता रहा। धर्मदास सवत् (१४७५ से १६००) उनके प्रधान शिष्यो मे से थे। कबीर की भाँति रैदास (रविदास) भी रामानन्द जी के शिष्यो मे से थे। कबीर की वाणी का सग्रह सिक्खो के गुरु ग्रन्थ-साहब मे भी हुआ है।

गुरु नानक (१५२६-१६६६)

इनका जन्म कार्तिकी पूर्णिमा (सवत् १५२६) को तिलवंडी ग्राम मे हुआ। इनके पिता का नाम कालूचन्दी जी और माता का नाम तृता था। बाल्यकाल से ही इनकी रुचि भगवद्-भजन और साधु-सेवा की ओर रही। एक बार इनके पिता ने कुछ

रुपया देकर सौदा खरीदने भेजा। वह रुपया इन्ही सब साधुओ को बाट दिया और घर आकर कह दिया कि मै सच्चा सौदा कर लाया। सिक्ख धर्म के ये आदि प्रवर्तक थे। सिक्ख शब्द शिष्य का ही बिगडा हुआ रूप है। गुरु नानक ने बडी सीधी-साधी सरल भाषा मे सदाचार और भक्ति का पाठ पढाया और साथ ही हिन्दुओ मे संगठन की भावना उत्पन्न कर उनमे शक्ति का संचार किया। ये भी राम-नाम के उपासक थे किन्तु कबीर की भाति इन्होंने आकाश-पाताल के कुलाबे नही मिलाए वरन् ऐसी बाते कही जिनको जन-साधारण ग्रहण कर सके। इस सन्त परम्परा मे दादूदयाल (सवत् १६०७-१६६०) सुन्दरदास (१६५३-१७४६) मलूकदास (१६३१-१७३९) अक्षर अनन्य आदि प्रमुख हैं। इनमे सुन्दरदास जी अच्छे पढे लिखे और विद्वान् थे। इनकी कविता कवित्त सवैयो मे अधिक हुई है। मलूकदास जी बडे फक्कड थे। आलसियों का मूल मन्त्र 'अजगर करै न चाकरी पछी करै न काम, दास मलूका कह गये सबके दाता राम' इन्ही का है।

प्रेम-मार्गी शाखा

परिस्थितिया और विशेषताएं

जिस प्रकार संत कवियो मे मुसलमान धर्म के निकट आने की प्रवृत्ति दिखाई देती है उसी प्रकार सूफी कवियो मे हिन्दू धर्म से समझौता करने की ओर झुकाव है। सूफी लोग साधारण मुसलमानों से कुछ अधिक मुलायम तबियत के होते हैं। उन पर भारतीय ब्रह्मवाद का प्रभाव पडा था किन्तु उन्होने कबीर की भाँति मुसलमानी धर्म का खण्डन नही किया वरन् उसकी प्रशंसा ही की है। वे लोग अपनी स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय देते रहे हैं। सूफी लोग सगीत के प्रेमी होते है और सगीत मे ही उनको 'हाल' अर्थात् ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। इन कवियो मे हिन्दू-कथाओ को मसनवियो के ढाँचे मे ढाल कर अवधी भाषा मे

अपने काव्य लिखे और प्रबन्ध काव्य के अनुकूल दोहा, चौपाई और छन्द को अपनाया। ये हिन्दू-कथाएँ, प्रेम-कथाएँ है जो लौकिक होते हुए भी आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना करती हैं।

संक्षेप मे प्रेम-मार्गी-शाखा की विशेषताएं इस प्रकार है-

(१) इन कवियो ने हिन्दुओ की प्रेम कथाएं लिखी।

(२) इन कथाओ मे लौकिक प्रेम के साथ आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना की गई है।

(३) ये रचनाएं अवधी भाषा मे दोहा चौपाई छंद मे लिखी गई।

(४) ये रचनाएं मसनवी पद्धति पर लिखी गई है, जिसमे खुदा, रसूल, गुरु और बादशाहे वक्त के स्तवन के साथ कथा का प्रारम्भ होता है और कथा सर्गो मे न विभाजित होकर खंडो मे विभाजित होती है।

(५) इनके लिखने वाले प्रायः मुसलमान थे।

प्रेममार्गी परंपरा

प्रेम मार्गी साहित्य की परम्परा वैसे तो उषा-अनिरुद्ध की कथा से चली आती है किन्तु उसका विकसित रूप सूफी मुसलमान कवियो मे दिखाई पडता है। जायसी ने अपने पद्मवात मे अपने से पूर्व के चार ग्रन्थो का उल्लेख किया है मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती इनमे से मृगावती और मधुमालती उपलब्ध है, शेष दो ग्रन्थो का पत नही चला। मृगावती के लेखक हैं कुतुवन।

कुतुवन

सवत् १६५० के लगभग शेरशाह के पिता हुसैनशाह के दरबार मे रहते थे, ये चिश्ती वश के शेख बुरहान के शिष्य थे। मृगावती सवत् १५५८ मे लिखी गई थी। (डा० श्याम सुन्दरदास इसका रचना काल १५६६ मानते हैं) इस पुस्तक मे चन्दगिरि के राजा गणपति देव के राजकुमार और कञ्चनपुर की राजकुमारी मृगावती के प्रेम का वर्णन है

मधुमालती के लेखक हैं मजन। इस ग्रन्थ के कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र राजकुमार मनोहर का महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती के साथ पारस्परिक प्रेम और वियोग की कथा है। इस कथा मे नायक और नायिका के साथ उपनायक ताराचन्द और उपनायिका प्रेमा का वर्णन आया है। उपनायक ताराचन्द के त्याग के ही कारण नायक और नायिका का विवाह हो सका। प्रेम-मार्गी कवियो मे इनके अतिरिक्त जायसी, उसमान जिनकी चित्रावली सवत् १६०० मे लिखी गई थी। शेख-नवी, कासिमशाह नूर मोहम्मद आदि और भी अनेक नाम आदर से लिए जातेहैं। इन सब मे जायसी ने सबसे अधिक प्रसिद्ध पाई है।

मलिक मुहम्मद जायसी

ये महाकवि प्रेममार्गी कवियो के प्रतिनिधि कवि माने जाते है।

जीवन-वृत्ति

जायसी का जन्म सन १४९२ के लगभग माना जाता है इनकी प्रसिद्ध पुस्तक पद्मावत का रचना काल ९४७ हिजरी अर्थात् १५९७ विक्रमी है। कुछ लोग ९४७ हिजरी को फारसी अक्षरो मे लिखे जाने के कारण ९२७ पढते है किन्तु ९४७ अधिक उपयुक्त मालूम पड़ता है। क्योकि शेरशाह सुलतान जिनकी बन्दना पुस्तक के आरम्भ मे "बादशाह वक्त" के रूप मे हुई है, ९२७ मे गद्दी पर नही बैठे थे। ये "जायसी" (राय-बरेली) मे रहते थे, इसीलिए जायसी कहलाए। ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिदी के शिष्य थे। (गुरू मोहिदी सेवक मे सेवा)। चेचक के प्रकोप से इनकी एक आँख जाती रही थी किन्तु इससे इनमे कोई हीनता का भाव नही उत्पन्न हुआ था। इन्होने एकाक्षी होने के कारण अपनी तुलना शुक्राचार्य से की है। इनकी यद्यपि मुसलमान धर्म पर पूरी अवस्था थी तथापि इनको हिन्दू धर्म का भी अच्छा ज्ञान था, कही-कही अवश्य ये गलती कर गए हैं जैसे इन्द्र को कैलास पर बैठाना। अमेठी के राजा इनका बहुत मान करते थे और वही इनकी

कब्र बनी हुई है। जायसी का देहान्त सन् ९४९ हिजरी अर्थात् सन् १५४२ मे बतलाया जाता है।

जायसी ने तीन ग्रन्थ लिखे है पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। पद्मावत मे राजा रतनसेन और पद्मावती की प्रेम कथा है और अखरावट मे वर्णमाला के क्रम से उपदेश हैं। आखिरी कलाम में मुसलमानी धर्म के अनुसार कयामत का हाल है। 'पद्मावत' इनकी कीर्ति का मूल स्तम्भ है।

ग्रन्थ

पद्मावत मे जैसा ऊपर कहा जा चुका है रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का वर्णन है। हीरामन तोता ने इन दोनो का योग कराया था। इस कथा मे दोनो ओर से प्रेम की पीर दिखलाई गई है। राजा सिंहलद्वीप चले जाने पर उसकी पहली रानी नागमती के विरह का बड़ा मार्मिक वर्णन हुआ है। उद्दीपन रूप से ऋतु वर्णन भी बड़ा अच्छा हुआ है। चित्तौड़ लौट आने पर राघव चेतन नाम के ब्राह्मण के बहकाने पर अलाउद्दीन सुल्तान ने पद्मावती की प्राप्ति के लिए चित्तौड पर चढाई की थी, सन्धि हो जाने पर शीशे मे पद्मावती की छाया के दर्शन कराए गए थे। पीछे से रत्नसेन बंदी होकर दिल्ली जाते हैं। वहाँ से पद्मावती गोरा बादल की सहायता से और थोड़े छल के साथ उनको छुड़ा लाती है। किन्तु यह संयोग बहुत दिनो नही चलता। अन्त मे रत्नसेन कुम्भलनेर के राजा देवपाल के हाथो मारे जाते हैं। दोनो रानियाँ सती हो जाती है और अलाउद्दीन जब चित्तौड़ पहुँचता है तब उसको राख के ढेर के अतिरिक्त और कुछ नही मिलता। इस ग्रन्थ का अन्त शान्त-रस के स्थाई भाव वैराग्य मे होता है।

पद्मावत

रूपकत्व जायसी ने इस कथा को एक आध्यात्मिक रूपक का रूप दिया है :

"तन चितउर, मन राजा कीन्हा हिय सिंघल, बुधि पदमिनी चीन्हा,
गुरु सुआ जेई पन्थ देखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ?
नागमती यह दुनियाँ धन्धा, बाँचा सोई न एहि चित बधा ॥
राघव दूत सोई सैतानू । माया अलाउद्दीन सुलतानू ॥

ये रूपक मोटे तौर से ही ठीक बैठता है। राघव चेतन को शैतान कहना और अलाउद्दीन को माया कहना उचित ही है किन्तु नागमती को दुनियाँ-धन्धा कहना उसके साथ अन्याय है।

कवित्व और भाषा

प्रबन्ध काव्य मे पद्मावत का बहुत ऊँचा स्थान है। रामचरित-मानस के पश्चात् उसका दूसरा स्थान है। यह ग्रन्थ दोहा-चौपाइयो मे लिखा गया है। इसमे सात चौपाइयो के बाद एक दोहा आया है। इसकी भाषा बोलचाल की अवधी है। रामचरित मानस की अवधी परमार्जित और साहित्यिक भाषा है। जायसी ने बडे लम्बे चौडे वर्णन किए हैं जो कही-कही कथा-प्रवाह मे बाधक होते हैं किन्तु कथा का सूत्र कही नही टूटा है। जायसी की अलकार योजना बड़ी ही विशद है और विरह वेदना बडी मार्मिक है, यद्यपि वह कही-कही अत्युक्ति की कोटि तक पहुँच गई है। उन्होने सारी प्रकृति को वेदनामय दिखाया है। इसमे स्थान-स्थान पर बडी सुन्दर आध्यात्मिक व्यंजनाएँ आई हैं और इस पर हठयोग और वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का भी प्रभाव है।

'नैन जु देखा कमलभा, दसन ज्योति नग हीर'।

जायसी ने परमात्मा को सब जगह व्याप्त माना है।

परगट गुपुत सकल महँ पूरि रहा सो नावँ।
जहँ देखो तहँ ओही, दूसर नहि जहँ जावँ ॥

इस प्रकार जायसी ने अपना मुसलमानी व्यक्तित्व रखते हुए भी स्थान-स्थान पर प्रेम की कथा के सहारे अपने ऊपर पडे हुए भारतीय प्रभावो का परिचय दिया है।

राम-भक्ति-शाखा

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है सगुणोपासक भक्त कवि दो शाखाओं बटे हुए है एक राम भक्ति शाखा के और दूसरे कृष्ण भक्ति शाखा के। राम भक्ति शाखा के कवि रामानुजाचार्य और उनसे पीछे होने वाले रामानन्द जी की विचारधारा से प्रभावित है। श्रीरामानुजाचार्य के विशिष्ट द्वैतवाद मे ससार को माया और मिथ्या मानने वाले शंकराचार्य के सिद्धान्तो की प्रतिक्रिया दिखाई पडती है। इन्होने जड और चेतन दोनों को ही ब्रह्म के विशेषण रूप से सत्य माना है। इसी से इनका मत विशिष्टाद्वैत अर्थात् विशेषणयुक्त अद्वैत कहलाता है। इन्होने नारायण की उपासना को मुख्यता देते हुए भक्ति और शरणागति को उनकी प्राप्ति का साधन माना था। रामानन्दजी ने नारायण की स्थापना रामचन्द्र जी के रूप मे की थी। राम-भक्ति-शाखा के प्रधान कवि गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी

यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास जी साहित्य जगत के परमज्योतिमय पिण्डो मे से हैं तथापि उनका जीवन वृत्त अभी बहुत कुछ अन्धकार मे ही है। उनके जीवन के सम्बन्ध मे हमको कुछ सकेत उनके ग्रन्थों मे मिलते हैं। कवितावली के उत्तरकाण्ड तथा विनयपत्रिका मे और कही-कही रामचरितमानस मे भी उन्होने अपने जीवन पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार की अन्त साक्ष्य के अतिरिक्त हमको कई ग्रन्थो का वाह्य-साक्ष्य भी मिलता है। इस प्रकार के ग्रन्थो मे से दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (१) बैनीमाधव कृत गुसाई चरित (२) बाबा रघुवरदास कृत तुलसीचरित (३) प्रियादास जी की भक्ति माल की टीका (४) जनुश्रुति। यद्यपि दोनो चरितो मे गोस्वामी जी का सुसंबद्ध जीवन चरित देने का प्रयत्न किया गया है तथापि उनकी प्रामाणिकता मे बहुत-कुछ सन्देह है। हमको तुलसी के अन्त साक्ष्य

पर ही निर्भर रहना पड़ता है। तुलसीदासजी के जीवन की मोटी-मोटी बातें इस प्रकार हैं।

जन्म

दोनों चरित्रों में तुलसीदासजी का जन्म १५५४ बताया गया है। रामगुलाम द्विवेदी के मत का अनुकरण करते हुए गियर्सन ने इनकी जन्म तिथि १५८९ विक्रमी माना है। उनके स्वर्गवास की तिथि सं० सोलह सौ अस्सी सर्वमान्य है।

सवत सोलह सौ असी, असी गग के तीर।
श्रावण शुक्ला सतमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

जन्म सवत् १५५४ मानने से तुलसीदासजी की आयु १०६ वर्ष की बठती है जो एक सयमी महात्मा के लिए दुर्लभ तो नही किन्तु कठिन अवश्य है। १५८९ मानने से उनकी आयु ९१ वर्ष की बैठती है जो आजकल के साधारण मान से अच्छी समझी जा सकती है।

निधन तिथि

निधन सवत् के सम्बन्ध मे तो कोई मतभेद नही है। निधन तिथि के सम्बन्ध मे अवश्य मतभेद है। कोई तो श्रावण शुक्ला सतमी मानते है और कोई श्यामा तीज। अब श्रावण श्यामा तीज अधिक मान्य समझी जाती है क्योकि उनके मित्र टोडरमल के वंशज इसी तिथि को गोस्वामी जी के नाम का सीधा देते है।

जाति और कुल

इनके पिता का नाम यद्यपि तुलसी चरित के हिसाब से मुरारी मिश्र है तथापि जनुश्रति के अनुसार उनका नाम आत्माराम दूबे बताया जाता है। इनकी माता का नाम हुलसी था। इसके लिये तुलसीदासजी की अत साक्ष्य मौजूद है। उन्होने लिखा है।

'तुलसिदास हिय हिय हुलसी सी'

ये पत्योजा के दुबे थे। तुलसीदास जी अपने को 'जायो कुल मंगन' मानते ही है किन्तु इस सम्बन्ध मे मतभेद है कि वे सरयूपारी ब्राह्मण

थे अथवा कान्यकुब्ज अथवा सनाढ्य। अधिकाश मत तो उनके सरयू-पारीण मानने के पक्ष मे है किंतु जो लोग उनका जन्मस्थान सोरो मानते है वे उनको सनाढ्य बतलाते है। नददास उनके भाई बतलाए जाते हैं किंतु यह निश्चय नही है कि वे सगे भाई थे सोरो सामग्री के अनुसार तुलसीदासजी नंददास के चचेरे भाई थे, अथवा गुरुभाई थे। एक बार वे नददास जी से मिलने ब्रज मे गए थे और कहा जाता है उनके प्रार्थना करने पर (तुलसी मस्तक तव नवे धनुपबान लेउ हाथ) श्री नाथजी की मूर्ति ने मुरली के स्थान मे धनुप बाण धारण कर लिया था। यह बात तुलसीदासजी की अनन्यता की परिचायक अवश्य है किंतु इस बात को देखते हुए कि तुलसीदासजी ने रामगीतावली के साथ कृष्ण गीतावली भी लिखी यह घटना सदिग्ध-सी जान पड़ती है।

अभुक्त मूलो मे जन्म लेने के कारण तुलसीदासजी के माता-पिता ने उनका जन्म से ही परित्याग कर दिया था। कवितावली में तुलसीदास ने स्वय लिखा है।

मातु पिता जग जाय तज्यो, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।

उनका बाल्यकाल बडी कठिनाई मे बीता। कवितावली मे वे लिखते है।

बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन।
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को।

विवाह और उद्बोधन

तुलसीदासजी का विवाह दीनबधू पाठक की रत्नावली नाम की विदुपी कन्या से हुआ था। एक बार उनकी अनुपस्थिति मे वह अपने भाई के साथ पीहर चली गई थी। तुलसीदासजी शीत और वर्षा के प्रकोप को सहते हुए उसके पास पहुँचे। उसने फटकारते हुए कहा -

अस्थि चरम मय देह मम, ता मे जैसी प्रीत।
वैसी जो श्रीराम मह होति न तौ भवभीति।

इसी से उदबोधन प्राप्त कर और उन्होने वैराग्य ले लिया और

तीर्थ स्थानों मे पर्यटन करने लगे। वे अधिकतर काशी, अयोध्या और चित्रकूट आदि स्थानो पर रहे।

तुलसीदास जी का काल कठिनाई मे बीता था, पीछे से उनको मान मिला उन्होने स्वयं ही लिखा।

अन्तिम दिवस

छाछि को ललात जे ते, राम नाम के प्रसाद।
खात खुनसात सोधे, दूध की मलाई है॥

उनके अतिम दिन फिर कठिनाई मे बीते चाहे उनको अंतिम दिनो मे धन का अभाव न रहा हो किंतु बाहु पीडा रोग से वे परेशान रहे। हनुमान बाहुक उन्होने इसी की शमन के लिए लिखा था। उनका देहावसान शिवपुरी (काशी) मे ही हुआ था।

गोस्वामी जी के ग्रन्थ

उनके कुल बारह ग्रन्थ है। ६ बडे अर्थात् १ रामचरित मानस (संवत् १६३१), दोहावली (संवत् १६४०), ३ कवित्त रामायण (सवत् १६६५–७१), ४ गीतावली* (संवत् १६२७), ५ कृष्ण गीतावली संवत् (१६२८), ६ विनय पत्रिका (संवत् १६४२), और ६ छोटे ग्रन्थ ये है १ रामलला नहछू (संवत् १६०३), २ वैराग्य सदीपनी (सवत् १६६९), २ वरवै रामायण (संवत् १६६९), ४—पार्वती मगल (संवत् १६४३), ५ जानकी मगल (सवत् १६४०), ६ रामाज्ञा प्रश्न (संवत् १६६९)।

प्रतिनिधि कवि

तुलसीदास जी ने अपने समय की दोनो भाषाओ को अर्थात् अवधी और ब्रजभाषा को अपनाया था और दोनो का ही अपनी लेखनी के चमत्कार से अलकृत किया था। दोनो भाषाओ के साथ उन्होने तत्कालीन प्रचलित काव्यशैलियो को अपनाया था। जायसी द्वारा प्रतिष्ठित

* यह सवत् गोसाई चरित के आधार पर दिए गए हैं। किन्तु गीतावली रामचरितमानस से पीछे की रची हुई मालूम होती हैं।

प्रबंध काव्य शैली को उन्होने रामचरितमानस मे अपनाया था और उसे प्रबन्ध काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ होने का गौरव प्रदान किया था। कृष्ण भक्त वैष्णवो की व्रजभाषा पद शैली को उन्होने गीतावली और विनय पत्रिका मे अपनाया था, पदो की सगीतमयी शैली के अनुकूल ही उन्होने उनमे हृदय की कोमल भावनाओ का समावेश किया था। राजदरबारो मे प्रचलित कवित्त सवैयो की शैली को उन्होने कवितावली मे अपनाया था। कबीर आदि द्वारा अपनाई हुई दोहो की पद्धति का प्रयोग तुलसीदास जी ने दोहावली मे किया था। नैतिक सिद्धान्तों के कंठस्थ रखने मे दोहे विशेष सहायक होते है, रहीम की बरवै शैली को तुलसीदास जी ने बरवै रामायण मे प्रतिष्ठा दी थी। शृंगारिक वर्णनो के लिए बरवै छद अधिक उपयोगी होता है। तुलसी ने वीरगाथा को छप्पय शैली का प्रयोग युद्धो का वर्णन मे किया है और उनकी भाषा भी ओजप्रधान रखी है। इस प्रकार उन्होने सभी प्रकार की शैलियो द्वारा अपने इष्टदेव का गुणगान किया था जिससे कि वे सभी रुचि के लोगो के अनुकूल रामचरित को जनता के सामने ला सके।

भाषा और शैली

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि तुलसीदास जी ने दोनों ही साहित्यिक भाषाओ को अलकृत किया था। जायसी मे जहाँ बोल-चाल की पूर्वी अवधी भाषा दिखाई पडती है, वहाँ तुलसी के रामचरितमानस मे पश्चिमी अवधी का साहित्यिक रूप दृष्टिगोचर होता है। बरवै रामायण मे उन्होने पूर्वी अवधी का प्रयोग किया है। गीतावली, कवितावली और विनयपत्रिका तीनो ही मे व्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। गीतावली की भाषा बहुत अंश मे सूर की भाषा के निकट आ जाती है और उस पर सूर का प्रभाव भी बहुत है किन्तु विनय पत्रिका की भाषा विशेष कर स्तुतियो सम्बन्धी पदो की भाषा संस्कृतगर्भित हो गई है। जहाँ उन्होने आत्म-निवेदन किया है वहाँ उनकी भाषा सरल और स्वाभाविक है। तुलसीदास ने यद्यपि अपने शीलवश यह लिखा है

कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहउँ लिख कागद कोरे ॥

तथापि इनकी भाषा मे सभी अलंकार 'रामप्रताप ते' अपने आप बिना प्रयास के खिचे चले आये।

'जदपि कवित रस एकउ नाही, राम-प्रताप प्रगट एहि माही।'

तुलसीदास की भाषा भावानुसारिणी है, विषय के अनुकूल ही भाषा मे ओज और माधुर्य का समावेश हुआ है। माधुर्य शब्दावली का एक उदाहरण लीजिए।

चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा ॥

× × × ×

विमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृङ्गा ॥

इसके विपरीत द्वैतवर्णन और टगण प्रधान ओजमयी शैली के दो उदाहरण लीजिए।

(क) बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावही।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावही ॥
निसि-चर-बरूथ विमर्दि गरजहिं भालु कपि दर्पित भये।
सग्राम अगन सुभट सोवहिं राम-सर-निकरन्हि हये।

(ख) भये क्रुद्ध जुद्धविरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदण्डधुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ॥
मन्दोदरी उर कम्प कम्पति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥

तुलसीदास जी की भाषा मे यत्र-तत्र फारसी और अरबी के शब्दों का जैसे गनी, गरीबनिमाज, मिस्कीनता, शोर आदि शब्दो का भी पुट रहता है कही कही बुन्देलखण्डी शब्दो मे एक विशेष माधुर्य उत्पन्न कर दिया है। जैसे

लषन लाल कृपाल ? निपटहिं डरिबी न बिसार।
पालबी सब तापसिन ज्यो राजधरम बिचारि ॥

सीताजी के इस उपालभ मे कितनी मीठी कसक है। तुलसीदास जी का शब्द-चयन भी बडा सुन्दर हुआ है।

वर्षाकाल के वर्णन मे बादलो के लिए मेघ, घन और वारिद तीन शब्दो का प्रयोग किया गया है, लेकिन तीनो का अपने-अपने उपयुक्त स्थान मे, जहाँ तक "डरपत मन मोरा" है वहाँ तो घन घमड और "घोरा" शब्दो का प्रयोग किया है। जहाँ "गरजत लागत परम सुहाये" कहा है यहाँ "मेघ" शब्द कहा है और जहाँ मोरों के नाचने का वर्णन है वहाँ "वारिद" जैसा कोमल शब्द रक्खा है।

तुलसी की विशेषताएँ :

१ तुलसीदासजी के काव्य मे भक्ति और मर्यादावाद को सबसे ऊँचा स्थान मिला है।

२ तुलसीदासजी समन्वयवादी थे। उन्होने ज्ञान और भक्ति निर्गुण और सगुण, शैव और वैष्णव सम्प्रदायो का समन्वय किया था।

३ प्रबन्ध काव्य और मुक्त काव्य दोनो के लिखने मे उन्होने विशेषता प्राप्त की थी।

४ मानव स्वभाव का उन्होने गम्भीर अध्ययन किया था और जीवन की अनेक रूपता और विभिन्न स्थिति के लोगों के पारस्परिक व्यवहार के चित्रण मे कुशलता प्राप्त की थी। वे सभी स्थल के लोगो के जीवन से परिचित थे। क्या किसानो की खेतीबाड़ी और क्या राजाओ के दरबारो का शिष्टाचार और क्या योद्धाओ का रण-कौशल, सबके वर्णन मे इन्होने अपनी गम्भीर जानकारी का परिचय दिया है।

५ रामचरित के वर्णन मे इन्होने अनेको ग्रन्थो का, जैसे वाल्मीकी रामायण, अध्यात्म रामायण, रघुवश, प्रसन्नराघव, हनुमान्नाटक आदि २ का सहारा लिया है किन्तु सामग्री को एकरस बना कर उस पर अपनी प्रतिभा की छाप लगा दी है।

६ तुलसीदास ने जीवन के मार्मिक स्थलो को पहचाना है।

और उनका मर्म-स्पर्शी वर्णन भी किया है। विश्वामित्रजी के साथ राम-लक्ष्मण का जाना। धनुषयज्ञ, लक्ष्मण-परशुराम सवाद, कैकेई के बड़े आकर्षक वर्णन है।

७ मुहावरो और लोकोक्तियो को उन्होने सरलतापूर्वक प्रयोग किया है और स्वय इनके ही बहुत से वाक्यांश सूक्तियो और लोकोक्तियो का रूप धारण कर चुके है और वे प्रत्येक स्थिति के लोगो के जीवन के अवलम्ब बन चुके हैं।

८ तुलसीदास जी ने सभी रसो का सफलतापूर्वक अपने काव्य मे समावेश किया है। रसो के अन्तर्गत उन्होंने शङ्का, धृति, चिंता, मोह हर्ष, दीनता, त्रास, चपलता, वितर्क आदि अनेको पुराने और नये संचारियो का वर्णन किया है।

अन्य कवि

यद्यपि गोस्वामी तुलसीदासजी रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि है तथापि वे उस शाखा के एकमात्र कवि नही है। उनके अतिरिक्त भक्तमाल के रचयिता नाभादासजी (सवत् १६९७) और महारामायण नाटककार प्राणचद चौहान (संवत् १६६७) । हिन्दी हनुमान्नाटक के लेखक हृदयराम, रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथसिंह (सवत् १७९०) रामभक्ति कवियो मे प्रमुख है।

यद्यपि रामभक्ति शाखा मे मर्यादावाद को विशेप महत्व मिला है तथापि अयोध्याजी के कुछ महन्तो ने जैसे रामचरणदास, रामप्रिया शरण, जानकी रसिकसरण, प्रेम (सखी जिनका असली नाम बख्शी हसराज था), आदि कवियो ने राम काव्य के सहारे सीताजी और उनकी सखियो का नखशिख तथा उसके रामविलास का वर्णन कर राम काव्य को शृगारिकतामय कृष्ण काव्य के समकक्ष बनाने का प्रयत्न किया था, यद्यपि केशवदास जी ने भी रामकाव्य लिखा था तथापि उनका वर्णन हम रीतिकाल के आरम्भ मे करेंगे। क्योकि उनमे रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ अधिक थी।

कृष्ण भक्ति शाखा

जिस प्रकार राम भक्ति शाखा श्री रामानुजाचार्य और आचार्य रामानन्दजी से प्रभावित थी, उसी प्रकार कृष्ण-भक्ति-शाखा निम्बार्काचार्य (बारहवी शताब्दी, श्री माध्वाचार्य (सवत् १२३०), श्री विष्णु स्वामी (सवत् १३७७), श्री वल्लभाचार्य (जन्म सवत् १५३६), चैतन्य महाप्रभु (जन्म सवत् १५४२) के सिद्धान्तो से अनुप्राणित थी। चैतन्य महाप्रभु को छोड कर जो बगाल से आये थे, प्राय और सभी भक्ति के प्रचारक दक्षिण भारत से पधारते थे और उनका ऋण हमारे ऊपर है। इन आचार्यो मे वल्लभाचार्य का कृष्ण-भक्ति-शाखा पर सबसे अधिक प्रभाव रहा। इन्होने ब्रह्मसूत्रो पर अणुभाष्य लिखा था और श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी टीका लिखी थी। इनके दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है और इनकी उपासना पद्धति पुष्टिमार्गी कहलाती है। पुष्टि भगवान के अनुग्रह को कहते हैं। इनके उपास्य नवनीत प्रिय गोपाल बालकृष्ण है। ये लोग अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा भगवान के अनुग्रह को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इन्होने भगवान के माधुर्य पक्ष को अपनाया था और इसी भावना को लेकर इनके अनुयायी अष्टछाप के कवि काव्य क्षेत्र मे अवतरित हुए थे।

अष्टछाप के कवि

अष्टछाप

ब्रज मे पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रभाव पड़ा और उस सम्प्रदाय में दीक्षित बहुत से महानुभावो ने अपनी भावनाओ को काव्य लहरी मे प्रभावित किया। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के सुपुत्र विट्ठलदासजी ने निम्नलिखित आठ कवियो को चुन कर उन पर प्रामाणिकता की छाप या मोहर लगा दी। उनमें से पहले चार कवि महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष चार कवि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के। इन कवियो के नाम इस प्रकार हैं। (१) सूरदास (२) कुंभनदास

(३) परमानन्द दास (४) कृष्णदास (५) छीत स्वामी (६) गोविन्द स्वामी (७) चतुर्भुजदास (८) नन्ददास ।

इन कवियो पर वल्लभ सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तो और उपासना पद्धति की छाप थी । इसके अतिरिक्त ये लोग महाप्रभु चैतन्य द्वारा लाई हुई जयदेव, चन्डीदास, विद्यापति आदि की गीत-पद्धति से भी प्रभावित थे । ब्रज की स्थानीय गीत-परम्परा भी उनको प्राप्त हुई थी । उस प्रकार कृष्ण काव्य प्राय गीत-काव्य में ही प्रस्फुटित हुआ । यह स्वाभाविक भी था । इन लोगो ने भगवान् कृष्ण का लोकोरंजक रूप अपनाया था । माधुर्य पक्ष से उद्घाटन के लिए संगीतमय मुक्तक काव्य ही उपयुक्त ठहरता है । राम-काव्य की सी जीवन की अनेकरूपता इसमे न होने के कारण भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध में प्रबन्ध काव्य का अभाव सा रहा ।

कृष्ण भक्ति शाखा की विशेषताएँ

इन लोगो ने श्रीकृष्ण भगवान् के माधुर्य पक्ष को अपना कर उनकी बाल और यौवन लीलाओ का वर्णन किया है ।

(२) इन कवियो की रचनाएँ मुक्तक काव्य में हुईं और इन्होंने सुन्दर गेय पद लिखे ।

(३) इन लोगो ने भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि ब्रज की भाषा को अपनाया ।

(४) इन कवियों ने अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा श्रीमद्भागवत् को विशेषकर उसके दसम स्कध को महत्ता दी और उससे अपने काव्य के लिये सामग्री ग्रहण की ।

(५) कृष्ण भक्त कवियो ने नियम और मर्यादा की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्ता दी ।

सूरदास

महात्मा सूरदास जी का जन्म १५४० के लगभग बतलाया जाता है । चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर श्री हरिदास जी की टीका के अनुसार इनका जन्म स्थान देहली के निकट सीही ग्राम माना जाता है ।

सूरदास जी की जाति के सम्बन्ध में भी कुछ थोडा मतभेद है। कोई इनको सारस्वत ब्राह्मण मानते है और कोई साहित्य-लहरी के एक छन्द के आधार पर इन्हें चन्दवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट बतलाते हैं। इस मत के अनुकूल इनके छ भाई और थे जो मुसलमानो के साथ लडाई मे मारे गये थे। कुछ लोग इनको जन्मान्ध बतलाते है और कुछ पीछे से अन्धा होना कहते है अस्तु जो कुछ भी हो। ये बेचारे सूरदास बहुत दिनो तक इधर-उधर फिरते रहे। इसी दीन-हीन अवस्था मे वे एक कुएं मे गिर पडे थे। कहा जाता है कि इनको कुएं से भगवान ने निकाला था और जब वे हाथ छुड़ाकर चले गये तब इन्होने यह दोहा कहा था।

बाह छुडाए जात हो निबल जानि के मोहि।
हृदते जब जाहुगे, मद बदोंगो तोहि ॥

पीछे से ये गऊघाट मे (यह स्थान आगरा और मथुरा के बीच रुनकता के निकट है) रहने लगे। यही पर इनकी श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य (संवत् १५३५-१५८७) से भेंट हुई। उनसे दीक्षा लेकर उनकी आज्ञा से इन्होने ब्रजभाषा मे भगवत् चरित्र का गान किया।

'श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनाओ, लीला भेद बताओ।'

श्री वल्लभाचार्य जी की आज्ञा से ही इन्होने श्रीमद्भागवत की कथा को पदो में गाया और वह ग्रन्थ सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ॥ सूरसागर में सवा लाख पद कहे जाते है। पर अब तक ५ या ६ हजार पदो से अधिक नही मिले।

इनकी मृत्यु परासौली ग्राम में हुई थी। मृत्यु के समय श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मौजूद थे। इस समय इन्होने 'भरोसो दृढ़ श्री चरनन केरो', वाला पद अपने गुरु की महिमा में गाया और यह पूछे जाने पर कि उस समय उनके नेत्रो में वृत्ति कहाँ थी, इन्होने निम्नलिखित पद गाकर अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

खजन नैन रूप रस माते।
अतिसै चारु चपल अनयारे, पल पिंजरा न समाते ॥

चलि चलि जात निकट स्रवनन से उलटि पलटि ताटंक फदाते ।
सूरदास अजन गुन अटके, नतरु अवहि उड जाते ॥

ग्रंथ

सूरदासजी कृत पाँच ग्रन्थ बताये जाते हैं। (१) सूरसागर (२) सूर-सारावली (३) साहित्य लहरी (४) नल-दमयन्ती (५) व्याहलो। इनमे से पिछले दो ग्रन्थ अप्राप्य है और उनके प्रामाणिक होने मे भी सदेह है। सूरदास की ख्याति सूर सागर पर अवलम्बित है। ये ग्रन्थ श्रीमद्भावत का आश्रय लेकर चला है किन्तु उसका अनुवाद नही है। भागवत के अनुकूल बारह स्कन्ध हैं किन्तु जितना विशद और सविस्तार वर्णन दशम स्कन्ध का है उतना और किसी का नही। दशम स्कन्ध के वर्णनो मे सूर के हृदय का उल्लास छलका पडता है।

रस

सूरसागर में यद्यपि सभी रसो का पुट मिलता है तथापि उसमें शृगार वात्सल्य और शाति रस का प्राधान्य है। शृगार के सयोग और वियोग पक्ष मे वे किसी से पीछे नही है और वात्सल्य के वर्णन मे हिन्दी का ही नही वरन् ससार का कोई कवि उनकी बराबरी नही कर सकता। इनके वात्सल्य वर्णन में बड़ी स्वाभाविकता है और उनमे बाल-मनो-विज्ञान के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है।

'मैया कबहि बढैगी चोटी'

अथवा

'मया मोहिं दाऊ बहुत खिजाओ'

की सी सहज स्वाभाविकता पर हजार-हजार अलकार न्यौछावर किये जा सकते है। बाल स्वभाव के सूक्ष्म निरीक्षण के (जैसे बच्चे का सोते समय होठो का हिलाना आदि) आधार पर ही कुछ लोगो का विचार है कि सूर जन्माध न थे। सूर के शृगार वर्णन मे गोप-जीवन की सजीवता और उसके हास विलास की पूरी झलक मिलती है।

उनके राधा और कृष्ण का प्रेम-व्यापार जीवन के अन्य व्यापारों के साथ ही चलता रहा है। और वह 'लरिकाई को प्रेम' होने के कारण विरहा अवस्था में अधिक तीव्र हो जाता है। भ्रमरगीत गोपियों की विरहावस्था का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। कृष्ण के भेजे हुए ऊधौ गोपियों को निर्गुण का उपदेश देने आये थे। किन्तु गोपियाँ श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व पर मुग्ध थी। 'निर्गुण कौन देश को वासी' कहकर उन्होंने ऊधौ को फटकारा था। ऊधौ अपना ज्ञान का गर्व गवाँकर कृष्ण के पास लौट गए। भ्रमरगीत में कृष्ण के राजकीय जीवन के विरुद्ध सरल जीवन की पुकार है। निर्गुण और सगुण का ऐसा काव्यमय विवेचन अन्यत्र मुश्किल से ही मिलेगा।

सूर की भक्ति सखा-भाव की थी किन्तु उनके पदों में दास्यभाव की दीनता की कमी नहीं है। 'प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ' सूरदास द्वारे 'आँधरो भिखारी' ऐसे पद दीनता से भरपूर हैं किन्तु कहा जाता है कि वे महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने से पूर्व लिखे गए थे।

भाषा

सूर की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है जिसमे कहीं-कहीं संस्कृत शब्दावली का भी समावेश है। इनकी भाषा में माधुर्य गुण का पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है। सूर ने कोमल वर्णों का ही प्रयोग किया है। उन्होंने यत्र-तत्र मुहावरों का भी जैसे 'नहात खसै जनिवार', खोटी खाई, 'हमारे हरि हारिल की लकडी' आदि का भी प्रयोग किया है, यत्र-तत्र जेर, मसाहत, ज्यान आदि विदेशी शब्द भी आगए हैं।

सूर और तुलसी

(१) सूर और तुलसी दोनों ही वैष्णव भक्त थे और राम और कृष्ण दोनों को समान रूप से महत्ता देते थे। तुलसी अपने मर्यादावाद के कारण अन्य देवताओं को आदर देते थे किन्तु सूरदासजी अन्य देवताओं को रंक और भिखारी कहते थे।

और देव सब रङ्क भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे (२) तुलसी की भक्ति-भावना नीतिपरक थी, किन्तु सूर ने प्रेम के आगे नीति की अवहेलना-सी की है (३) तुलसीदास जी ने अपने भगवान के लोक-रक्षक और लोकरजक दोनो ही रूपो को अपनाया। सूर का मन अपने भगवान के लोकरजक रूप मे अधिक रमा। (४) तुलसी के काव्य मे हमको जीवन की अनेक रूपता के दर्शन होते है। सूर ने जीवन के एक सीमित क्षेत्रो को ही लिया और उसको अपनी प्रतिभा से जगमगा दिया। वात्सल्य वर्णन मे तुलसी अपनी गीतावली मे सूर के निकट आए है। किन्तु वे बाल-जीवन की वह स्वच्छन्दता और सरलता नही दिखा सके जो सूर मे है। (५) तुलसी का शृंगार मर्यादा की सीमा से बाहर नही गया किन्तु सूर मे शृंगार पूर्णतया पल्वित हुआ और कही कही मर्यादा के तटो का उल्लघन कर गया। (६) सूर ने केवल ब्रजभाषा को ही अपनाया और तुलसी ने ब्रजभाषा और अवधी पर समान अधिकार का परिचय दिया है। (७) सूर का लक्ष्य था कि जीवन का माधुर्य दिखा कर जनता में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करे और तुलसी का लक्ष्य यह था कि एक आदर्श उपस्थित करके जनता के जीवन को ऊँचा उठावे। सूर ने मुक्तक गेय पद ही लिखे किन्तु तुलसी ने समान रूप से प्रबन्ध और मुक्तक काव्य मे विशेषता प्राप्त की और अपने समय की सभी प्रचलित शैलियो को अपनाया।

नन्ददास

अष्टछाप के कवियो मे महत्व की दृष्टि से सूरदास जी के पश्चात् नन्ददास जी का ही नाम आता है। नाभादास जी की भक्त-माल से यह प्रगट होता है कि वे 'चन्द्रहास' नाम के किसी व्यक्ति से सम्बन्धित थे। उनको अग्रज सुहृद कहा है। सभव है कि वे उनके बड़े भाई के मित्र हो अथवा बड़े भाई हो और मित्र भी हो। भक्तमाल की ही गवाही से प्रगट होता है कि वे रामपुर ग्राम के निवासी थे। श्रीगोकुलनाथ जी लिखित २५२ वैष्णवन की वार्ता के

अनुसार नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे और बाबा वेणीमाधव के अनुसार वे तुलसीदास जी के गुरु के भाई थे। नन्ददास जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के द्वारा पुष्टि मार्ग में दीक्षित हुए थे।

'नन्ददास कनौजिया प्रेम मढे। जिन सेस सनातन तीर पढ़े।
सिच्छागुरु बधु भये तेहि ते। अति प्रेम सो आयहि मिले तिहते॥

डा० श्यामसुन्दरदास जी इनका जन्म १५६० मे मानते हैं और डाक्टर रामकुमार वर्मा इनका जन्म सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे माना है। कृष्ण भक्त होने के कारण इन्होंने रामपुर का नाम श्यामपुर कर दिया था।

नन्ददास जी के छोटे-बड़े ग्रन्थ १६ माने जाते है किन्तु उनमें

ग्रन्थ

भ्रमरगीत और रासपचाध्यायी ने विशेष ख्याति पाई है। भ्रमरगीत मे उद्धव गोपी सवाद हैं। उनके भ्रमरगीत की यही विशेषता है कि उनकी गोपियाँ उद्धव को उनके ही बौद्धिक धरातल पर परास्त करने का प्रयत्न करती हैं। जहाँ सूर की गोपियो मे हृदय पक्ष की प्रधानता है वहाँ नन्ददास की गोपियो का बुद्धि प्रबल है। उन्होने श्रीकृष्ण पर करारे व्यंग्य भी किए है

गोकुल मे जोरी कोऊ, पाई नाहि मुरारि।
मदन त्रिभगी आपु हैं, करी त्रिभगी नारि॥
रूप गुनसील की॥

भ्रमरगीत का छन्द रोला और दोहा का मिश्रण है। इसकी अंतिम आधी पक्ति बडा माधुर्य उत्पन्न कर देती है। इस पर यत्र-तत्र गीत गोविन्द की भी छाया है। ये ग्रन्थ रोला और दोहा-छदो मे लिखा गया था। रासपचाध्यायी का कथानक मुख्यत. श्री मद्-भागवत से लिया गया है। इसमें भगवान् कृष्ण की महानता का बड़ा सुन्दर-सजीव और गतिमय चित्रण है, देखिये

नूपुर कङ्कन किंकिन करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदङ्ग उपङ्ग चङ्ग एकहि सुर जुरली॥

मृदुल मुरज टङ्कार तार-झङ्कार मिली पुनि।
मधुर जम की तार गुँजार रली पुनि॥

नन्ददास जी ने जो कुछ लिखा है बड़ी साज-संभाल के साथ, इसीलिए उनके सम्बन्ध मे कहा जाता है "और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया।"

अन्य सम्प्रदायों के कृष्ण भक्ति कवि

वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति-शाखा की और भी सम्प्रदाये ब्रज मे प्रचलित थी। उनमे राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय, गौड़िया सम्प्रदाय, टट्टी सम्प्रदाय और निम्बार्क सम्प्रदाय मुख्य हैं। राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे राधिका जी को मुख्यता दी गई है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरि वंशजी थे। इनका रचना काल संवत् १६०० से १६४६ तक माना जाता है। कहा जाता है कि राधिका जी ने स्वय इनको दीक्षा दी थी। इनके "हित चौरासी" नाम के चौरासी पद भाषा के सगीत-मय प्रवाह और माधुर्य के कारण बडे मधुर और आकर्षक है। ध्रुवदास तथा वृन्दावन चाचाजी इन्ही के सम्प्रदाय के थे। हितहरि वंशजी की कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

आजु बन नीको रास बनायो,
पुलिन पवित्र सुगम जमुनातट, मोहन बेनु बजाओ,
कल कङ्कन किंकिन नू पुर-धुनि, सुनि खग मृग सचु पायो
जुवतिन-मण्डल-मध्य श्याम घन, सारग राग जमायो
ताल मृदग उपग मुरज ढफ मिलि रस-सिन्धु बढायो।

ब्रज मे कृष्ण भक्ति शाखा के अनेको कवि हुए हैं। उनमे गदाधर भट्ट और हरि राम व्यास, श्री चैतन्य महाप्रभु की गौडिया सम्प्रदाय के थे। हरिदासजी का रचनाकाल सवत् १६०० से लेकर १६१७ तक माना जाता है। पहले निम्बार्क सम्प्रदाय के थे और इन्होने पीछे से टट्टी सम्प्रदाय की स्थापना की। ये सगीत विद्या मे बडे निपुण थे और

तानसेन के संगीत-गुरु थे। इनके अतिरिक्त मीरा, रसखान और घनानन्द के नाम विशेष महत्व के है।

मीरा

स्त्री कवियित्रियो मे इनका सबसे ऊँचा स्थान है। इनका जन्म संवत् १५७३ में जोधपुर राज्य के अन्तर्गत मेढते नाम के ठिकाने मे हुआ था।

"मेढतिया घर जन्म लियौ है मीरा नाम कहायौ।"

ये रत्नसिंह की पुत्री थी, इनका विवाह उदयपुर के महाराजा कुमार भोजराज जी से हुआ था। किन्तु थोडे दिन के पश्चात् ही इनका सौभाग्य सिंदूर पुँछ गया था। वास्तव मे ये बालकपन ही से अपने को गिरधरलाल जी से विवाहित मानती थी और इसलिए इनका मन वैवाहिक जीवन से उदासीन रहा और इनको साधु संगति ही अधिक रुचिती रही। इनके घर के लोग उनके साधु समागम से रुष्टि थे और इस कारण उनको अनेक यातनाएँ भी दी गई। इनको विष पिलाया गया और उसको भगवान का चरणामृत समझकर इन्होने पान कर लिया था। "विष को प्याली राणा जी भेज्यो द्या- मेडतणी ने प्याय। कर चरणामृत पी गई रे गुण गोविन्दरा गाय।" इनको रैदास का शिष्य बतलाया जाता है। संवत् १६४५ के लगभग इनका देहावासन हुआ। (कुछ लोग इनकी मृत्यु १६३० मे मानते है)। कहा जाता है कि ये रणछोड भगवान् की मूर्ति मे लीन हो गई थी। इनका पत्र-व्यवहार गोस्वामी तुलसीदास जी से भी होना बताया जाता है। मीरा ने गोस्वामी जी को लिखा था कि उनके घर वाले भगवत भजन और साधु संगति मे वाधा डालते है। इस सम्वन्ध मे इनकी सलाह मागी थी। तुलसीदास जी ने "जाके प्रिय न राम वैदेही। सो छाँड़िये कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही" वाला प्रसिद्ध पद लिख भेजा था, किन्तु इन घटना मे विद्वान् लोग सन्देह करते है। जहाँ अन्य कवियो ने गोपियो आदि का विरह निवेदन किया है वहाँ मीरा ने स्वयं

गिरधरलाल को अपना पति मानकर उनके सम्बन्ध में विरह के गीत गाये है। इसी के कारण उनके गीतों मे विशेप तन्मयता है। मीरा के गीतो ने लोक-प्रियता भी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त है। इनके पद कुछ राजस्थानी मे हैं और कुछ व्रज भापा मे। उनकी प्रेम-पीड़ा मे एक निजीपन है जो अन्यत्र देखने को नही मिलती। इनकी रचनाएँ इनके हृदयोल्लास की द्योतक हैं। 'प्रेम दिवाणी' मीरा ने जो कुछ लिखा भावावेश मे लिखा, उसमे सहज स्वभाविकता है और एक अपूर्व प्रवाह और गतिमयता है।

मीरा के चार ग्रंथ वतलाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं :

१ नरसी जी मायरा, २ गीत गोविन्द टीका, ३—राम गोविन्द ४ राग सोरठ के पद।

मीरा का एक प्रसिद्ध गीत नीचे दिया जाता है :—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई,
दूसरा न कोई हो नाथ दूसरा न कोई।
साधुन सग बैठ बैठ लोक लाज खोई,
यह तो वात फूट गयी जानत सव कोई॥
असुँअन जल सीच सीच प्रेम वेल वोई,
यह तो वेल फैल गयी इमृत फल होई।
आई थी मै भगत जान जगत देख रोई,
लोग कुटुम भाई वन्द सग नही कोई॥

रसखान

हिन्दी के मुसलमान कवियो मे रसखान का प्रमुख स्थान है, ये जाति के पठान थे और इनका शाही खानदान से सम्वन्ध था। वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित थे और इन्होने सूर की ही भाँति सखा-भाव से कृष्णलीला का वर्णन किया है। ये वडे प्रेमी स्वभाव के थे, किन्तु इनका भौतिक प्रेम पीछे से कृष्ण-प्रेम मे परिवर्तित हो गया था। इनकी दो पुस्तके प्रसिद्ध हैं (१) प्रेम वाटिका और (२) सुजान रसखान। प्रेम वाटिका मे दोहे है और सुजान रसखान मे कवित्त-

सवैये। इन्होने कवित्त-सवैयो मे ऐसी विशेषता प्राप्त की थी कि लोग सवैयो को "रसखान" कहने लग गये। रसखान के सवैये वास्तव मे रस की खान है। उनमे सरल जीवन का सरस माधुर्य झलकता हुआ दिखाई पड़ता है देखिए --

लकुटी और कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौ,
आठहुँ सिद्धि नावो निधि को सुख, नन्द की गाय चराय बिसारौं,
नैनन सो रसखान जबौ ब्रज के वन बाग तडाग निहारौं,
कोटिन हू कलधौत के धाम करील की कुञ्जन ऊपर वारौं।

भारतेन्दु जी ने ठीक ही कहा है--

'इन मुसलमान हरिजनन पे, कोटिन हिन्दू वारिए।'

घनानन्द

इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ है और ये सवत् १७९६ मैं नादिरशाह के सिपाहियो के हाथ से मेरे गए थे। काल विभाग की दृष्टि से इनकी गणना रीतिकाल के कवियो मे होनी चाहिए थी, किन्तु कृष्णभक्ति की दृष्टि से इनकी अन्य भक्त कवियो के साथ स्थान दिया गया है। ये मोहम्मदशाह के मीर मुँशी थे और सुजान नाम की वेश्या पर आसक्त थे। इनकी कविता मे सुजान का नाम बहुतायत से आता है। फुटकर सवैयो के अतिरिक्त सुजान सागर, विरह लीला आदि कई ग्रन्थो का पता लगता है। ये निम्बार्क सम्प्रदाय मे दीक्षित थे, विशुद्ध ब्रजभाषा मे लिखने मे इनको रसखान के समकक्ष रखा जाता है। इन्होने बड़े सुन्दर विरह के छन्द लिखे है जो अपनी स्वाभाविक मृदुलता और कोमलता मे अद्वितीय हैं। एक उदाहरण --

पर कारज देह को धारे फिरौ, 'परजन्य' जथारथ ह्वै दरसौ,
निधि नीर सुधा के समान करो, सबही विधि सुन्दरता सरसौ,
घनानन्द जीवन-दायक हौ कबौ मेरियौ पीर हिये परसौ,
कबहुँ वा विसासी सुजान के आगन मो अँसुवान को लै बरसौ।

"परजन्य" का श्लेष दर्शनीय है जिसके दो अर्थ हैं (१) बादल और (२) पराये अर्थ। विसासी=विश्वासी। विपरीत लक्षण से विश्वासी का अर्थ होगा, विश्वास घातक।

अकबरी दरबार के कवि

भारत के पठान शासक अपने को भारतीय सस्कृति रहन-सहन और रीति-रिवाज से परे समझे रहे। उन्होने जनता के साथ घुलमिल कर रहने का प्रयत्न नही किया था। अकबर की उदारता के कारण हिन्दू मुसलिम ऐक्य के प्रयत्न होते रहे। उसने स्वय हिन्दुओ के निकट आने का प्रयत्न किया। उसके दरबार मे कला और साहित्य को पोषण मिला। जहाँ सूर-तुलसी और अन्य अष्टछाप के कवि प्राकृत राजाओ और बादशाहो के आश्रय से दूर वहाँ रहे कुम्भनकदासजी आदि ने तो "सन्त कहा सीकरी सो काम, आवत जात पन्हैया टूटी, बिसरि गयो हरि नाम" कह कर अकबर का निमत्रण का तिरस्कार किया था वहाँ गग आदि कवियो ने अकबरी दरबार की शोभा बढाई थी। उस समय अकबर के प्रमुख अधिकारियो ने हिन्दी को अपनाया और उनका दरबार भी हिन्दी कवियो का आश्रय-स्थल बना हुआ था। इनमे अब्दुर्ररहीम खानखाना और बीरबल का नाम प्रमुख है।

रहीम

इनका जन्म सवत १६१० मे हुआ था। ये अकबर के अभिभावक बैरामखाँ के पुत्र थे और अकबर के प्रधान सेनापति रहे। ये बडे दानी और कवियो के आश्रयदाता रहे थे। कहा जाता है कि इन्होने एक कवि को छत्तीस लाख रुपए दिए थे। पीछे से ये जहाँगीर के कोप भाजन बन गए और इनको बुरे दिन देखने पडे। इनकी झलक निम्नलिखित दोहे मे मिलती है।

'ये रहीम दरदर फिरे, माँग मधुकरी खाँहि।
यारो यारी छोड़िए वे रहीम अब नाहि।" ये बडे रसिक और

सहृदय कवि थे। तुलसीदास जी से इनकी विशेष घनिष्ठता थी, सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।" तुलसी द्वारा भेजे हुए इस दोहार्द्ध की पूर्ति मे "गोद लिए हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय।" लिखकर तुलसी के सम्बन्ध मे अपनी आदर भावना का परिचय दिया था। जिस ब्राह्मण के हाथ तुलसी ने दोहे का पहला भाग लिखकर भेजा था, उसको प्रचुर धन देकर उसकी लडकी के विवाह मे सहायता दी। रहीम संस्कृत और फारसी के अच्छे विद्वान् थे। इनको अवधी और व्रजभाषा पर समान अधिकार था, रहीम ने संस्कृत छंदो मे भी (जैसे कि आजकल के युग मे अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने की है) कविता की थी, मालिनी छन्द मे लिखे हुए इनके मदनाष्टक ने बड़ी प्रसिद्धि पाई है। इन्होने पाँच ग्रन्थ रचे है (१) रहीम दोहावली, (२) बरवै नायिका-भेद, (३) शृंगार-सोरठ और (४) रास पचाध्यायी। राज दरबार मे रहने के कारण इनका मानव प्रकृति का अच्छा ज्ञान था, इनकी झलक इनके नीति के छन्दो मे मिलती है। वे बरवै-छंद के जन्मदाता माने जाते है। उन्होने बरवै छंद मे नायिका भेद की एक पुस्तक लिखी है। बरवै छंद की प्रेरणा रहीम को एक नव विवाहित सिपाही की स्त्री से मिली थी, जिसने कि नीचे लिखे छन्द मे अपने पति को प्रेम-सदेश भेजा था "प्रीति का बिरवा चलेहु लगाय। सीचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय।" इसमे आए हुए बिरवा शब्द के आधार पर रहीम ने इस छन्द का नाम बरवै रख लिया था।

ये दोनो ही अकबरी दरबार के श्रेष्ठ कवियो मे गिने जाते है।

गंग और नरहरि

गग ने शृङ्गार और वीर दोनो रसो की कविता की है। इनकी गणना तुलसीदास जी के साथ सुकवियो के सरदारो मे की गई है और दोनो मे इस बात की समता बताई गई है कि इनकी भाषा मे बहुत-सी भाषाओ का मेल रहा है।

इनको अकबर से महापात्र की पदवी मिली थी। इन्होने छप्पय और कवित्त लिखे हैं। इनके दो ग्रन्थ—रुक्मिणी मगल और छप्पय प्रसिद्ध है। इनके लिखे हुए छप्पय पर अकबर ने गोवध बन्द करा दिया था

नरहरि वन्दीजन

अरिहु दन्त तिनु धरै ताहि नहि मार सकत कोइ।
हम सतत तिनु चरहि, वचन उच्चरहि, दीन होइ ॥
अमृत पय नित स्रिवहि, बच्छ महि थभन जावहि।
हिन्दुहि मधुर न देहि, कटुक तुरकहि न पियावहि ॥
कह कवि नरहरि अकबर सुनो, बिनवति गउ जोरै करन।
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन ॥

जैन कवियो मे इन्होने बहुत प्रसिद्ध पाई है। ये जौनपुर के रहने वाले थे और इनका आगरे से भी सम्बन्ध रहा है। इनकी कविता अधिकतर सुन्दरदास जी के ढग पर है जो नीति और ज्ञान से भरी हुई है। समयसार के नाम का इनका एक ग्रन्थ है जिसको लोग नाटक कहते है, किन्तु वास्तव मे यह नाटक नही है, इसमे आध्यात्मिक पद्य दिये हुए है। इन्होने अर्द्ध कथानक नाम से अपनी आत्म कथा भी लिखी है।

बनारसीदास (जन्म सवत् १६४३)

इनका जन्म संवत् १६४६ के लगभग अनूपशहर (उत्तर प्रदेश) मे माना जाता है। ये कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जीवन अधिकांश मे राज-दरबार के सम्पर्क मैं ही व्यतीत हुआ मालूम पडता है। इनका उत्तरकाल संन्यास आश्रम मे व्यतीत हुआ था। इनके दो ग्रन्थ है काव्य कल्पद्रुम और कवित्त-रत्नाकर। इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है जिसमें तत्सम शब्दो की ओर झुकाव अधिक है। श्लेष और यमको का चमत्कार सस्कृत तत्सम शब्दो के सहारे अधिक दिखाया जाता है। इनका षट्ऋतु वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। यद्यपि यह

सेनापति

उद्दीपन के रूप मे लिखा गया है तथापि इसमे संश्लिष्ट योजना और सूक्ष्म और निजी निरीक्षण का परिचय मिलता है।

बृष कौ तरनि, तेज सहसौ किरन करि।
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है॥
तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी।
छाँह को पकरि पथी-पंछी बिरमत हैं॥
सेनापति नैक दुपहरी के ढरकत होत।
घमका विषम ज्यो न पात खरकत है॥
मेरे जान पौन सोरी ठौर को पकरि कौनो।
घरी एक बैठि कहू घामै बितवत है॥

(स० १६०२ मे इनका रहना बताया जाता है।) इनका सुदामा चरित्र भी इसी काल मे लिखा गया है। ये सीतापुर जिले के बाडी नामक कसबे के रहने वाले थे। यह एक छोटा-सा ग्रन्थ है किन्तु इस रचना मे वर्णन बहुत सरस और हृदयग्राही है। इसमे एक गरीब ब्राह्मण परिवार के जीवन की सुन्दर झाकी मिलती है। सुदामा और कृष्ण के चरित्र-चित्रण में लेखक ने बडा कौशल दिखाया है। इस ग्रन्थ मे ब्रजभाषा का माधुर्य्य पूर्ण रूप से पाया जाता है। इनका एक सुन्दर उदाहरण लीजिए

नरोत्तमदास

सीस पगा न झगा तन पै।
प्रभु! जाने को आहि बसै केहि ग्रामा॥
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु।
पॉय उपाहन की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक।
रह्यौ चकि सो बसुधा अभिरामा॥
पूछत दीनदयाल को धाम।
बतावत अपनो नाम सुदामा॥

अध्याय ३

रीति-काल

जिस प्रकार भाषा के पश्चात् व्याकरण बनता है उसी प्रकार लक्ष्य ग्रन्थो के, जैसे पदमावत, रामचरित मानस सूरसागर, सुदामा चरित आदि जो साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ समझे जाते हैं के पश्चात् लक्षण ग्रन्थों का, जिनमे साहित्य के आदर्शं, सिद्धान्तो और विभिन्न अगो का, जैसे रस अलंकार, लक्षण, व्यजना आदि का विवेचन होता है। वे रचनात्मक साहित्य के अग नही होते वरन् साहित्य-शास्त्र के अंग होते है। संस्कृत मे लक्षण ग्रन्थो की (जैसे दण्डी का काव्यादर्श मम्मट का काव्य प्रकाश) परम्परा सातवी शताब्दी से चली आती थी। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र तो और भी बहुत पुराना था।

परिस्थिति

राजनीतिक वातावरण अपेक्षाकृत शांत था। अकबर की उदार नीति ने हिन्दुओ को राज्यशासन की ओर आकर्षित कर लिया था। अकबर का दरबार कवियो का आश्रय स्थल बन गया। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी अपनी कला और सौदर्य प्रेम का परिचय दिया था।

हार की मनोवृत्ति को भूलाने के दो ही मार्ग होते है या तो अपनी श्रेष्ठता की बातो मे मग्न रहकर शासको की उपेक्षा करना या शासकों के जीवन मे अपना जीवन मिलाकर आनन्द और हास विलास की मदिरा मे अपने दुख को भुला देना। भक्तिकाल मे पहली प्रवृति का अनुसरण हुआ और रीतिकाल मे दूसरी का। देश मे स्थापत्य और चित्रकला को मान मिल रहा था। काव्य मे भी कलापक्ष को प्रधानता मिली। भक्तिकाल के कृष्ण काव्य ने जहाँ जीवन मे आस्था उत्पन्न की

थी वहाँ उसका दुष्परिणाम भी हुआ। लोगो का झुकाव अति शृंगारिकता की ओर हो गया। शृँगार के आध्यात्म की तीखी औषधि को गले उतारने के लिए मधुरावेस्टन का (जैसा Sugar coated कुनीन की गोलियो मे होता है) प्रयोग किया गया था। धीरे-धीरे औषधि का तो लोप हो गया और लोगो को शृंगारिक शर्करा की चाट पड गई। इन्ही सब परिस्थितियो मे रीतिकाल का जन्म हुआ।

रीतिकाल की विशेषतायें

१ रस, अलकार, नायिका भेद आदि काव्यागो के लक्षण लिखकर उनके उदाहरण उपस्थित करना। इन उदाहरणो मे शृँगार रस की ही प्रधानता रही क्योकि वही राजदरबारो मे अधिक रुचिकर हो सकता था।

२ भूषण आदि ने वीर रस की कविता की किन्तु प्रवृत्ति वही रही अर्थात् लक्षण लिखकर उदापरण उपस्यित करने की।

३ इस काल मे काव्यागो के लक्षण प्राय. दोहो मे लिखे जाते थे और उदाहरण कुछ दोहो मे और कुछ कवित्त सवैयों मे। वीर रस के उदाहरण अधिकाश मे कवित्तो मे लिखे गये। शृँगार मे सवैयों को मान मिला।

४ इस काल की भाषा मे अवधी का पूट किन्तु ब्रजभाषा को प्राधान्य मिला।

५ मुक्तक काव्य का प्रधान्य रहा।

६ कवियो की प्रतिभा बँधी हुई प्रणालियो मे प्रवाहित होने लगी।

७ कविता राज्याश्रित हो गई।

८—भाव पक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को प्राधान्य मिला।

रीतिकाल के प्रवर्तक

रीतिकाल के प्रवर्तक के सम्बन्ध मे कुछ मतभेद है आचार्य शुक्ल जी रीतिकाल के प्रवर्तक केशवदास जी को न मानकर चिन्तामणि को मानते है। इस सम्बन्ध मे उनका कहना है कि केशवदास जी ने अल-

कार सम्प्रदाय को अपनाया था जो खतम हो चुकी थी और उनका अनुकरण करने वाला पचास वर्ष तक कोई नही रहा। चिन्तामणि ने रस सम्प्रदाय को अपनाया और उनके पश्चात् रीतिकाल की परम्परा अक्षुरण रूप से चलती रही। रस और अलकारो मे किसी एक को प्रधानता देना यह तो रुचि की बात है। सस्कृत मे भी अलकार सम्प्रदाय की पुनरावृत्ति हुई थी। वैसे तो रीतिकाल के बीज (नायिका भेद आदि) भक्तिकाल मे सूर और नन्ददास जी मे मिलते है किन्तु उनका पूर्णरूपेण अंकुरित होना हम केशव मे ही पाते है। रीतिकाल की मूल प्रवृत्ति लक्षण देकर उदाहरण लिखने की हमको केशव की रसिक प्रिय और कविप्रिया मे ही मिलती है। उनके लिखे हुए लक्ष्य ग्रन्थ (रामचद्रिका) मे भी छदो और अलकारो का बाहुल्य मिलता है।

आचार्य केशवदास :

जीवन वृत्ति (१६१२–१६७४)

आचार्य केशवदास ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रंथ शीघ्रबोध के कर्त्ता पडित काशीनाथ के पुत्र थे। ये जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे और ओडछा (विंध्य प्रदेश) के रहने वाले थे और 'नृपमणि' मधुकर शाह के पुत्र दूलहराय के भाई इद्रजीत के आश्रित कवि थे। (ये रीति-काल से कुछ पहले अवश्य हुए किन्तु उसके अग्रदूत थे।) इनको इद्रजीत के यहाँ से २२ गावो की जागीर मिली थी; इसीलिए इंद्रजीत के सम्बन्ध मे उन्होने लिखा है 'जाके राज केसोदास राजसो करत है'। कहा जाता है कि ये मृत्यु के पश्चात् प्रेत बन गए थे और तुलसीदास जी की सलाह से रामचन्द्रिका के सौ पाठ करने पर उस योनि से मुक्त हुए थे।

ग्रंथ

केशवदास जी के चार ग्रथ माने जाते है रसिक प्रिया (१६४८) रामचन्द्रिका (१६५२) कवि प्रिया (१६५८) विज्ञान गीता (१६६७)। रसिक प्रिया मे रस का वर्णन और शृंगार को प्रधानता मिली है। कवि प्रिया

में-कवि शिक्षा के साथ अलकारो आदि का वर्णन है। रामचन्द्रिका मे कवि-प्रिया की शिक्षा के अनुकूल ही छदो और अलकारो के बाहुल्य के साथ रामचरित का वर्णन है। विज्ञान गीता मे अध्यात्मिक वर्णन है।

कवित्व और आचार्यत्व

केशवदास जी हमारे सामने दो रूपो मे आते है, कविरूप मे भी और आचार्य रूप मे भी। उनका कवित्व भी उनके आचार्यत्व से प्रभावित है। आचार्य रूप से वे अलकार सम्प्रदाय के अनुयायी थे। 'भूपन बिन न राजई कविता वनिता मित्त' रामचन्द्रिका मे भी अलकारो का प्राधान्य है, इसलिए उनकी कविता मे भावपक्ष का अभाव तो नही किन्तु वह बोझिल अलकारो के कारण कुछ दबसा गया है, इसीलिए उनका प्रबन्ध निर्बाह भी कुछ बीच बीच मे टूटा-सा हो गया है। तुलसीदासजी की भाँति उन्होने मार्मिक स्थलो को नही पकड़ा किन्तु अलकार और पाडित्य-प्रदर्शन के जो अवसर आए उनको नही छोडा क्योकि वे संस्कृत के अच्छे पडित थे। अलकारो के बाहुल्य के ही कारण केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा गया है और उनके सम्बन्ध मे यह भी प्रसिद्ध है।

कवि को देन न चहे विदाई, पूछे केशव की कविताई।

यह कहना केशव के साथ अन्याय होगा कि उनका भावपक्ष नितात शिथिल था; कही कही बडे सुन्दर भावपूर्ण स्थल दिखाई देते है

मग को श्रम श्रीपति दूर करै सिय को शुभ वाकल अँचल सो।
श्रम तेउ हरै तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगचल सौं॥

१ केशव मे आचार्यत्व और कवित्व दोनो ही था किन्तु उनका कवित्व उनके आचार्यत्व से प्रभावित था।

केशव की विशेषतायें

२ केशव की कविता मे अलकारों और छदो का बाहुल्य है रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हो बहु छन्द।' उसमे यमक, श्लेष,

परिसंख्या आदि अलङ्कारो के बडे सुन्दर उदाहरण मिलते है, केशव मे भावपक्ष की कमी नही है किन्तु वह बोझिल अलंकारो से दबा हुआ है।

३ केशव के सवाद वडे चमत्कारिक और वाक्‌पटुता पूर्ण है।

४ केशव ने राजदरबारी शिष्टाचार का पूरा-पूरा निर्वाह किया है, जैसा कि दशरथ, और विश्वामित्र के मिलने पर तथा विश्वामित्र और जनक के मिलने पर हुआ था।

५ केशव ने सभी रसो का अच्छा चित्रण किया है।

६ केशव ने चमत्कारिक स्थलो को लाने की जल्दी मे कही-कहीं प्रवन्ध निर्वाह मे शिथिलता कर दी है और बहुत से मार्मिक स्थल भी छूट जाते है। जैसे कैकेई मन्थरा संवाद और दशरथ कैकेई के सवाद विना ही रामचन्द्रजी को बनवास दे दिया है।

७ केशव की भाषा सस्कृत गर्भित व्रजभाषा है जिसमे कही-कही बुन्देलखण्डी का भी पुट है, जैसे गौरमदाइन, कोद आदि-आदि। श्लेष आदि अलङ्कारो के कारण भाषा का संस्कृत-गर्भित हो जाना स्वाभाविक ही है।

केशव को प्रकृति से प्रेम अवश्य था किन्तु उसमे रीति के परिपालन और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक है उसमे बिम्ब ग्रहण और सश्लिष्ट वर्णन की अपेक्षा नाम परिगणन अधिक है, जैसे दण्डकारण्य के वर्णन मे।

बेर भयानक सी अति लगै।
अर्क समूह जहाँ जगमगै॥

चिन्तामणि त्रिपाठी

इनका जन्म संवत् १६६६ के लगभग हुआ था। ये भूषण और मतिराम के भाई थे। इनको ही आचार्य शुक्लजी ने रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। इन्होने काव्य-विवेक कविकुल-कल्पतरु और काव्य प्रकाश नाम के तीन ग्रन्थ लिखे है। ये अधिकतर संस्कृत के

साहित्य दर्पण और काव्य-प्रकाश से प्रभावित हैं। इनके ग्रन्थो मे रस को प्रधानता मिली है।

महाराजा जसवन्तसिंह

ये मेवाड के महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे और इनका जन्म संवत् १६२३ में हुआ था। ये शाहजहाँ और औरङ्गजेब के बडे विश्वासपात्र थे। संवत् १७३२ मे इनका शारीरान्त काबुल मे, जहाँ ये अफगानो से लड़ने भेजे गये थे, हुआ। इनके अलङ्कार ग्रन्थो मे भाषा-भूषण बहुत प्रसिद्ध है। उसकी विशेषता यह है कि एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनो आ गये है। एक उदाहरण लीजिए, 'परिसख्या'।

परिसख्या इकथल बरजि दूजे थल ठहराइ।
नेह हानि हिय मे नही, भई दीप मे जाइ॥

नोट नेह स्नेह और तेल दोनों को कहते है। जहाँ किसी चीज का होना या न होना दोषयुक्त समझा जाता है वहाँ न रख कर ऐसी जगह रखने को जहाँ उसका रहना या न रहना विशेष हानिकारक न हो ऐसे चमत्कार को परिसख्या कहते है।

इनके तत्व ज्ञान सम्बन्धी भी कई ग्रन्थ है जैसे अपरोक्ष सिद्धात सिद्धान्तबोध, सिद्धान्त और प्रबोध चन्द्रोदय नाटक।

बिहारी

जीवन-वृत

इनका जन्म सवत् १६६० मे माना जाता है। ये जाति के माथुर ब्राह्मण (चौबे) थे और इनके पिता का नाम केशवराय था (ये प्रसिद्ध केशवदास नही थे) इनका जन्म ग्वालियर मे हुआ था इनका बाल्यकाल बुन्देलखण्ड मे बीता। तरुनाई अपनी सुसराल मथुरा मे रहकर आई, 'तरुनाई आई सुखद मथुरा बसि ससुराल' इनको विशेष ख्याति जयपुराधीश मिरजा राजा जयशाह के दरबार मे

मिली। जहाँ उन्होने नीचे के दोहे के आधार पर अपना आदरपूर्ण स्थान बना लिया था।

नहि परागु नहिं मधुर-मधु नहि विकास यहि काल।
अली-कली ही सो बँध्यो आगे कौन हवाल॥

राजा अपनी नव-विवाहिता पत्नी के प्रेम मे राजकाज भूले हुए थे। इस दोहे को सुनकर उनका ध्यान राजकाज की ओर आकर्षित हो गया और वे बिहारी का आदर करने लगे। कहा जाता है कि उन्होंने एक एक दोहे पर एक एक अशर्फी देने का वायदा किया था।

बिहारी ने सतसई नाम का एक ही ग्रन्थ लिखा था। उसमे यद्यपि काव्यांगो के लक्षण नही है तथापि प्रायः सभी काव्यांगो के उदाहरण जैसे हाव-भाव, नायका-भेद, अनुभाव आदि आ गये हैं।

कवित्व

बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छन्द में बड़ा अर्थ-गाम्भीर्य, वर्णन-चातुर्य और अलकारिता भर दी हैं। वे समास गुण मे अद्वितीय है। एक एक दोहे मे से सिनेमा-की-सी रील खुलती जाती है। देखिए

बतरस लालच लाल की, मुरली धुरी लुकाय।
सौंह करे, भौंहनु हँसे दैन कहै नट जाय॥

बिहारी मे यमक, श्लेष आदि अलकारो का बाहुमूल्य है। असंगति, विशेषोक्ति आदि के भी सुन्दर उदाहरण मिलते है। गागर मे सागर भरने का गुण उनमे विशेष रूप से वर्तमान है। किसी ने ठीक ही कहा है.

सतसैया के दोहरा, ज्यो नावक के तीर।
देखत मे छोटे लगें घाव करे गम्भीर॥

(१) बिहारी ने दोहा जैसे छोटे छन्द में बड़ा अर्थ गाम्भीर्य वर्णन-विस्तार और अलङ्कार-वैभव भर दिया है। बिहारी मे गागर में सागर भरने का पूर्णरूपेण वर्तमान था।

बिहारी की विशेषतायें

(२) उन्होंने प्राय सभी काव्यांगो के उदाहरण उपस्थित कर दिये है।

(३) बिहारी को संसार के अनेक विषयो की—जैसे ज्योतिष, वेदान्त, वैद्यक आदि की जानकारी थी। उन्हे रङ्गों के मिश्रण संबंधी ज्ञान का भी परिचय था। 'जा तन की झाई परत स्याम हरित दुति होई।' नीला और पीला मिलाकर हरा रंग हो जाता है।

(४) बिहारी ने प्राचीन सस्कृत और प्राकृत ग्रन्थो से जैसे गाथा सप्तसती, हाल सप्तसती आदि से भाव-सामग्री ली, किन्तु उस पर अपनी प्रतिभा की छाप लगा दी।

(५) बिहारी ने सौन्दर्य का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। नायिका के सहज सौन्दर्य के आगे अलङ्कारों को महत्व नही दिया है। उनको 'दर्पण के से मोर्चे' कहा है।

(६) बिहारी ने शृगार के साथ भक्ति और नीति के भी दोहे लिखे है।

(७) कही कही हास्य का भी प्रचुर पुट दिया है। 'ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर' वृषभ=बैल की बहिन, वृषभानु की लडकी। हलधर=बलराम के भाई। हलधर बैल को भी कहते है।

(८) बिहारी का निरीक्षण बडा सूक्ष्म और व्यापक था।

(९) भाव सुकमारता भी अद्वितीय है, 'हरुए कहि, मोहि, मोहिय वसत सदा बिहारीलाल।' बिहारी का विरह-वर्णन कही-कही अतिशयोक्ति की हद तक पहुँच गया है।

(१०) बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है। उसमे माधुरी का प्राधान्य है। बिहारी की भाषा कही-कही फारसी के शब्दो का जैसे पाइन्दाज, इजाफा, किबिलनुमा और बुन्देलखण्डी शब्दो का भी जैसे गुहार, कहलाने, गिनवी आदि का पुट है। इन्होने शब्दो को अधिक तोडा-मरोडा नही है।

मतिराम

इनका जन्म तिकवापुर मे संवत् १६७४ के लगभग हुआ था। ये भूषण और चिन्तामणि त्रिपाठी के भाई थे।

जीवन वृत

बहुत दिनो तक बूंदी के महाराजा भावसिह के आश्रित रहे थे। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है। एक 'ललित ललाम' जो अलङ्कारो का है और दूसरा 'रस राज' जिसमे रस निरूपण है। इनके अतिरिक्त साहित्यसार, लक्षण शृगार और मतिराम सतसई नाम के तीन ग्रन्थ और हैं।

कवित्व और आचार्यत्व

मतिराम के लक्षण यद्यपि कही-कही दूषित है तथापि वे बडे सुबोध है। इन्होने अपने काव्य मे भावुकता को पूरी मात्रा मे स्थान दिया है किन्तु उसको बिहारी की भाँति अत्युक्ति तक नही पहुँचा दिया है। भाषा की सरसता इनकी विशेषता हैं। माधुर्य गुण की उसमे प्रधानता है। इनकी भाषा मे अलङ्कारो का बोझिलपन नही है वरन् भाषा और भाव का सहज स्वाभाविक सौन्दर्य है। इनकी कवित्ता के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है

ज्यो ज्यो निहारिये नैरे ह्वै नैननि,
त्यो त्यो खरी निखरै सी निकाई।

विशेषताएँ

(१) मतिराम मे कवित्व और आचार्यत्व दोनो है। उनके कवित्व को आचार्यत्व ने दबाया नही है।

(२) मतिराम की कविता मे भाव-सौन्दर्य और भाषा-सौन्दर्य का एक अपूर्व सतुलन है।

(३) मति की भाषा शुद्ध व्रज-भाषा है जो बडी उत्कृष्ट है।

(४) मतिराम ने बडे सुन्दर कवित्त, सवैये कहे हैं और उनके दोहे भी अपनी सरसता और अर्थ गम्भीरता में किसी से पीछे नही।

(५) मतिराम ने वाह्य प्रकृति की अपेक्षा मानव प्रकृति का अधिक चित्रण किया है किन्तु वाह्य प्रकृति की नितान्त उपेक्षा नही है।

भूषण

भूषण के समय मे राजनीतिक परिस्थितियाँ वदल गई थी।

परिस्थितियाँ

औरंगजेब ने जहाँगीर और शाहजहाँ की नीति को छोड़ कर धार्मिक कट्टरता की नीति को अपनाया था। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दुओ मे जागृति के चिन्ह दिखाई देते थे। दक्षिण में शिवाजी, बुन्देलखन्ड में महाराज छत्रसाल और पन्जाब मे गुरु गोविन्द सिंह आदि इस जाग्रति के जीवित प्रतीक थे। भूषण कवि भी इसी जाग्रति के वैतालिक थे।

जीवन वृत्त

भूषण का असली नाम क्या था यह किसी को पता नही। इनको चित्रकूट के सोलकी राजा रुद्र के यहाँ से 'भूषण' की पदवी मिली थी, ये तिकवांपुर (कानपुर) के रहने वाले और जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर था। यह ऊपर ही कहा जा चुका है कि ये चिन्तामणि और मतिराम के भाई थे। इनके जन्म संवत् के सम्बन्ध मे मतदेद है इनका जन्म सवत् मिश्रबन्धुओ ने १६९२ और इनका स्वर्गवास स० १७७२ मे माना जाता है। शुक्ल जी ने १६७० माना है।

कहा जाता है कि भूषण की भावी इनको खाना परोस रही थी। भूषण ने दाल मे नमक कम बतलाया। इस पर इनकी भावी ने उलाहना दिया कि नमक की गाड़ी भर कर नही रख दी है जो डाल देती। इस से वे घर से निकल गये और शिवाजी के दरबार मे पहुँचे। वहाँ आपने वीर रस प्रधान कवित्त सुनाकर शिवाजी को प्रसन्न किया। उन्होने एक-एक छन्द पर एक-एक लाख रुपया प्राप्त किया और सात गाडी नमक की मँगावा कर अपने घर भिजवा दी।

भूपण के तीन ग्रन्थ है, शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक। भूषण उल्लास, दूपण उल्लास और भूषण हजारो नाम के तीन ग्रन्थ और बतलाए जाते हैं। भूपण ने रीतिकाल मे कविता की थी। रीतिकाल की प्रवृत्ति के अनुकूल शिवराज भूपण मे इन्होने अलङ्कारो के लक्षण लिख कर उनके उदाहरण लिखे किन्तु वे शृंगार के न थे वरन् वीररस के थे, भूपण ने शिवाजी और महाराज छत्रसाल की प्रशंसा की है। यद्यपि इन्होंने औरंगजेब की बुराई की है तथापि बाबर, अकबर और शाहजहाँ की तारीफ की है। इनको हिंदुत्व पर पूरा गर्व था। इनकी राष्ट्रीयता हिन्दुत्व की थी। महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी के नीचे कंधा लगा कर इनको मान दिया था। शिवाजी के सम्बन्ध मे वे लिखते है 'राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज, देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर मे' वीर रस के ही अनुकूल इनकी भाषा मे ओज है। उसमे व्रजभाषा का तो प्राधान्य है किन्तु फारसी अरबी के शब्दो का भी प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है, (जैसे जंग, उमराव, खलक, पील आदि।

ग्रन्थ और कविता

कुछ विशेषताएँ

१ इन्होने वीर रस की कविता की है और शिवाजी मे सभी प्रकार का वीरत्व दिखाया है।

२ इसकी वाणी मे ओज-गुण की प्रधानता है।

३ इनको हिन्दुत्व पर पूरा अभिमान था। हिन्दुत्व की रक्षा के कारण ही इन्होने शिवाजी और छत्रसाल का यश-गान किया।

४ इनके काव्य मे कवित्व के साथ इतिहास का भी अच्छा निर्वाह हुआ है।

५ इनके अलङ्कारो के लक्षण अस्पष्ट और दूषित है। इन्होने 'अपने मतो' को अधिक मान दिया मालुम पड़ता है।

उदाहरण

निकसत स्थान ते मयूखै प्रलै भानु कैसे,
फारै तम तोम से गयदन के जाल को।
लागति लपटि कंठ वैरिन के नागिनी सी,
रुद्रहि रिझावै दै दै मुडन के माल को।
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौ बखान करौ तेरी करबाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कलिकासी किलकि कलेऊ देति काल को,

देव

ये इटावे के रहने वाले और जाति के कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे।

जीवन वृत

आचार्य शुक्लजी ने इन्हे सनाढ्य ब्राह्मण माना है। इनका जन्म सं० १७३० के लगभग हुआ था। इन्होने १६ वर्ष की अवस्था से ही कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। ये अनेक राजा रईसो के रहे और औरंगजेब के पुत्र को भी जो हिन्दी का प्रेमी था अपनी कविता का रसास्वाद कराया था। इन आश्रयदाताओ मे राजा भोगीलाल जी जिनके नाम पर इन्होने रस-विलास बनाया था, अधिक प्रशन्सा की है।

ग्रन्थ और कवित्त

इन्होंने भाव विलास, भवानी विलास, अष्टयाम, शब्द रसायन सुख सागर तरंग, आदि १५ ग्रन्थ बनाये। कोई कोई इनकी ग्रन्थ संख्या ७२ तक बतलाते है। ग्रन्थो मे वे ही छन्द बार-बार मिलते है।

देव जी हमारे सामने आचार्य और कवि दोनो रूपो रूपो में आते हैं। देव आचार्यत्व मे रीति-काल के श्रेष्ठ कवियों मे आते हैं। किन्तु मिश्रबन्धुओ के साथ यह कहना कठिन है कि वे सर्वोपरि हैं।

विशेषताएँ

(१) देव के लक्षण ग्रन्थों मे रस अलङ्कार, शब्दशक्ति आदि प्राय सभी काव्याङ्गो का वर्णन आया है इसी से उनको आचार्यत्व मे बहुत ऊँचा स्थान मिलता है।

(२) देव ने यद्यपि आध्यात्मिक विषयो को भी लिया है तथापि उनकी रुचि शृंगार और नायका-भेद की ओर अधिक रही है।

(३) इन्होने घनाक्षरियाँ और सवैये अधिक लिखे है।

(४) देव ने अपनी कविता मे भी अलङ्कारो और लक्षणा व्यजना का प्रचुरता से प्रयोग किया है।

(५) देव भी बिहारी की भाँति बहुज्ञ थे और उनको भी मानव प्रकृति का अच्छा परिज्ञान था। वाह्य-प्रकृति की ओर इनकी निगाह अपेक्षाकृत कम गई है।

(६) देव की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। उसमे अनुप्रास और यमक का अच्छा चमत्कार है। बीच-बीच मे तुकबदी के शब्दो का बाहुल्य रहता है। माधुर्य और सुकमारता अर्थ-अभिव्यक्ति आदि गुण इनकी कविता में प्राचुर्यता से मिलते है। इनकी भाषा मे गतिमयता अधिक है। इन्होने लोकोक्तियो का भी प्रयोग अच्छा किया है और इनकी सूक्तियाँ जैसे 'जोगहू से कठिन सयोग पर नारी को' बहुत प्रसिद्ध हो गई है।

देव और बिहारी

मिश्र बन्धुओ ने अपने नवरत्न मे सूर और तुलसी के पश्चात् देव को स्थान दिया था। इससे साहित्य मे एक विवाद-सा चल पडा था। कुछ लोग जैसे स्व० प० पद्मसिह शर्मा, लाला भगवान दीन बिहारी के पक्ष मे रहे। वास्तव मे दोनो ही प्रेम के कवि है, दोनो ने प्रेम के उत्तमोत्तम वर्णन किये है। देव मे कवित्व के साथ आचार्यत्व भी है। बिहारी मे कवित्व है किन्तु उन्होंने कोई लक्षण ग्रन्थ न लिख कर

अपनी सतसई मे प्रायः सभी काव्यांगों के उदाहरण दे दिये हैं। बिहारी की रुचि सहज सौन्दर्य-मयी नायिका की ओर अधिक रही है। वे अलकारो के विरुद्ध थे। देव ने अलकार, नायिकाओं का वर्णन किया है। देवताओ मे कौन छोटा और कौन बडा यह कहना कठिन है। हमे कृष्ण बिहारी मिश्र के साथ यही कहना होगा कि बिहारी अपने छोटे छन्द के कारण जुही की कली है और देव अपने कवित्त और सवैयो के कारण गुलाब का या कमल के फूल है।

उदाहरण :

वारै कोरि इदु अरविंदु रसबिंदु पर,
मानै ना मलिंद बिंदुसम कै सुधासरो।
मलै मल्लि, मालती, कदंव, कचनार चंपा,
चंपेहू न चाहै चित चरन टिकासरो।
पदुमिनी तुही षटपदु को परम पदु,
"देव" अनुकूल्यो और फूल्यो तो कहा सरो,
रस, रिस, रास, रोस आसरो सरन बिसे,
बीसो विसवास रोंकि राख्यो निसि-बासरो।

भिखारी दास

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे केवल इतना ही ज्ञात है कि ये प्रतापगढ के पास ड्योगा नाम के गाँव के रहने वाले थे और जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका कविता काल संवत् १७८१ से १८०७ तक माना जाता है।

जीवन वृत्त

इनके काव्य निर्णय ने बहुत प्रसिद्धि पाई है। इसके अतिरिक्त रस सारांश, छन्दार्णव पिंगल, विष्णु पुराण भाषा शतरंज शतिका आदि इनके और भी कई ग्रन्थ बतलाये जाते हैं।

ग्रन्थ

कवित्त की अपेक्षा इनके आचार्यत्व की अधिक ख्याति है। इन्होने सभी काव्यो का कुछ विशदता के साथ वर्णन वर्णन किया है। इन पर काव्य प्रकाश का अधिक प्रभाव है। इन्होने गुण दोषों और शब्द शक्तियो आदि का अच्छा विवेचन किया है और भाषा पर भी इन्होने अपने विचार प्रकट किये हैं। ब्रजभाषा के सम्बन्ध मे नीचे का प्रसिद्ध छद इन्ही का है।

आचार्यत्व

> ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोय।
> मिलै संस्कृत पारस्यो, पै अति प्रगट जु होय॥
> ब्रज मागधी मिलै अमर, नाग यमन भाखानि।
> सहज पारसी हू मिलै, षट् विधि कवित बखानि॥

इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। दासजी ने शब्दाडम्बर और भाषा चमत्कार की ओर कम ध्यान दिया है। किन्तु वह उससे नितात शून्य नही है।

इस काल मे रीति-ग्रन्थो की कुछ बाढ-सी आ गई थी। इनमे तोषनिधि, रसलीन जी जिनका अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार। जियत, मरत, झुकि-झुकि परत जिहि चितवत एक बार॥' बहुत प्रसिद्ध है। दूलह जिनके कवि-कुल-कठाभरण ने बहुत प्रसिद्धि पाई है, बेनी प्रवीन जिनका 'नव रस तरग' नाम का ग्रन्थ रसो ग्रन्थो मे ऊँचा स्थान पाता है, उल्लेखनीय है किन्तु हम इनका नामोल्लेख करके ही सतोष करेगे।

अन्यकविगण

रीतिकाल के कवियो मे पद्माकर का बहुत ऊँचा स्थान है। आचार्य शुक्लजी ने इनकी भाषा की लाक्षणिकता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इनका जन्म बाँदा मे सवत् १८१० मे और स्वर्गवास १८९० मे हुआ। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था जो पन्ना महाराज

पद्माकर

हिंदूपत के गुरू थे। पद्माकर जी ने कई राजदरबारो का आश्रय ग्रहण किया था किन्तु जयपुर के प्रतापसिंह के यहाँ अधिक दिन तक रहे। उनके पुत्र जगतसिंह के यहाँ भी कुछ काल रहे। इन्ही के नाम पर उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ जगद्विनोद रचा गया था। इसने बडी प्रसिद्धि पाई। रस के प्रारंभिक विद्यार्थियो के लिए बहुत उत्तम ग्रन्थ है।

ग्रन्थ और कवित्व

जगद्विनोद के अतिरिक्त इनके आठ ग्रन्थ और है। इनके नाम इस प्रकार है। हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण (यह अलकार ग्रन्थ है) जयसिंह विरुदावली, आलीजाह प्रकाश, हितोपदेश, रामरसायन, प्रबोध पचासा और गगालहरी। पद्माकर ने शृंगार और वीररस दोनो को अपनाया है, इसके साथ ये उच्चकोटि के आचार्य भी थे। शृंगार और वीररस के अनुसार ही इनकी भाषा ने माधुर्य और ओज गुणो को अपनाया है। इनकी कविता मे अनुप्रास आदि का शब्द, चमत्कार कही-कही अधिक मात्रा मे दिखाई देता है। इन्होने ऋतु-वर्णन भी अच्छा किया है। इन्होने लोकोक्तियो के सफल प्रयोग द्वारा बड़ा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

"कैसी भई तुम्हे गंग की गेल मे, गीत मदारन के लगे गावन"

वीररस का एक उदाहरण

वारि टारि डारौ कुम्भकर्णहि विदारि डारौ।
मारौ मेघनादै आज यो बल अनत हौ॥
कहै 'पद्माकर' त्रिकूटहू ढाहि डारौ।
डारत करेई जातु धानन कौ अन्त हौ॥
अच्छहि निरच्छि कपि रुच्छ ह्वै उचारौ इमि।
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौ॥
जारि डारौ लकहि उजारि डारौ उपवन।
फारि डारौ रावण कौ तौ मै हनुमंत हौं॥

ये मथुरा निवासी सेवाराम जी के पुत्र थे। इनका कविता-काल सवत् १८७९ से १९१८ तक माना जाता है। ये ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियो मे गिने जाते हैं। इन्होने चार रीतिग्रन्थ लिखे है रसिमानन्द, रसरंग कृष्णजू का नखशिख और दूषण दर्पण। इनकी यमुना लहरी मे भी रीतिकालीन प्रभाव है। इन्होने षट्-ऋतुओ का विशद वर्णन किया है। यह वर्णन उद्दीपन रूप से हुआ है और इसमे अमीरो के ऋतु सम्बन्धी विलास-वैभव का भी वर्णन है। इनकी ब्रजभाषा चलती हुई होते हुए भी सुव्यवस्थित है और उसमे इनकी वाग्विदग्धता का परिचय मिलता है।

ग्वाल

यद्यपि १७०० से १९०० तक रीतिकाल कहलाता है तथापि इस काल मे अन्य प्रवृत्तियाँ, जैसे भक्ति की, शृंगार की, वीर-चरित वर्णन की और ज्ञान की भी प्रचुर मात्रा मे वर्तमान रही। रीतिकाल के भक्तिकाव्य के लेखको मे कुछ जैसे कृष्णगढ नरेश नागरीदास जी, घनानंद, वृन्दावन चाचा आदि। जिनका उल्लेख भक्तिकाल मे ही होना चाहिए था, प्रमुख है। स्फुट कवियो मे वृन्द (जन्म सवत् १७७०) जिनके नीति के दोहे बहुत प्रसिद्ध है, बेताल (जन्म सवत् १७३७) गिरधर कविराय (जन्म संवत् १७७०) जिनकी कुण्डलियो मे जीवन और नीति सम्बन्धी बड़े तथ्य आये है, नीतिकार कवियो मे प्रमुख है। दीनदयाल गिरि ने सुन्दर अन्योक्तियाँ लिखी है। सबलसिह चौहान ने महाभारत का हिन्दी अनुवाद रचनाकाल (स० १७१२ १७८१) किया था। आलम ने जो पहले ब्राह्मण थे, और पीछे से जिन्होने शेख नाम की रंगरेजिन से विवाह कर लिया था। वियोग शृंगार का सुन्दर वर्णन किया है। उनकी ये पंक्तियाँ 'जाथलकीन विहार अनेकन ताथल बैठि कांकरी चुन्यो करे' बहुत प्रसिद्ध है।

रीतिकाल की अन्य प्रवृत्तियाँ

वीर रस के लेखको मे, सिक्खो के दशम गुरु श्री गुरुगोविन्दसिंह, लाल कवि जिनका छत्रशाल प्रकाश बहुत प्रसिद्ध है, सूदन जिन्होने

अपने आश्रयदाता महाराज खुजानसिंह का वीररस पूर्ण यश गान किया है आदि ने बहुत ख्याति पाई है। रीतिकाल भी वीर विहीन नही रहा। इनके अतिरिक्त बोध, सम्मन, ठाकुर, पजनेश आदि और भी कवि हुए है।

रीतिकाल और कृष्ण-काव्य

यद्यपि रीतिकाल को कृष्णकाव्य से बहुत कुछ प्रेरणा मिली किन्तु रीतिकाल और भक्तिकाल के कृष्णलीला वर्णन मे अन्तर है। भक्ति काल मे जो शृङ्गारिक लीलाओ का वर्णन हुआ उसमे इष्टदेव के प्रति भक्ति-भावना का प्रधान्य ही रहा और उसमें एक निजी उत्साह और उल्लास की झलक मिलती है। रीतिकाल मे आलम्बन तो राधाकृष्ण ही रहे और उसका ईश्वरत्व भी कायम रहा किन्तु उनके पीछे वह भक्त भावना नही रही जो भक्तिकाल मे थी। उनकी नाम प्रति शृङ्गारिकता के लिए आवरण मात्र रह गया। आगे के कवि रीझि है तो कविताई, न तो राधिका गुविन्द सुमिरिन को बहानो है सो यह बहाना मात्र ही रह गया। रीतिकाल के शृगार मे जीवन का उल्लास कम या और बँधी हुई रीति की खानापुरी अधिक थी।

रीतिकाल की न्यूनतायें

रीतिकाल मे लक्षण ग्रन्थ लिखे गए कितु उनमे सस्कृत के ग्रन्थो कासा, गभीर विवेचन न हो सका। उसमे शब्द-शक्ति, रस निष्पत्ति आदि का वर्णन कम हुआ है। इसका कारण यह था कि संस्कृत के ग्रन्थ पडितो के लिए लिखे गए थे और रीति ग्रन्थ राजाओ के लिए। हिंदी के रीति ग्रन्थो मे गद्य का स्थान नही मिला, इस कारण भी विवेचन मे न्यूनता रही। यद्यपि हिंदी के रीति ग्रन्थों मे संस्कृति ग्रन्थो का सा सूक्ष्म विवेचन नही है तथापि उनके उदाहरण विशेषकर शृङ्गार के और अलङ्कारो के बहुत सुन्दर रचे गए है। नाटक का विषय अछूता ही रहा। उन दिनों नाटक लिखे भी नही गए भाषा का भी विशेष परिष्कार नही हुआ।

अध्याय ४

आधुनिक काल

गद्य का विकास

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण मे अंग्रेजो का भारत मे राजनीतिक आधिपत्य स्वीकृत हो चुका था। राजशासन की दृष्टि से मोटे तौर से उन्नीसवी शताब्दी के दो काल विभाग है एक सन् ५७ के विप्लव के पूर्व का जिसमे शासन ईस्ट इडिया कम्पनी के बोर्ड के हाथ मे था, और दूसरा विप्लव पश्चात् का जब राजनीतिक सत्ता ब्रिटिश राज के आधीन आई थी।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

उन्नीसवी शताब्दी मे अँग्रेजो की राज्य-शक्ति के सम्पर्क के बढने के कारण भारतीयो मे भी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सुधारों की चेतना जाग्रत हो चली थी। साधारण लोगो मे भी आत्म-निरीक्षण और सुधार की प्रवृत्ति आई। राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द जैसी महान विभूतियो का आविर्भाव हुआ जिन्होने धर्म मे बुद्धिवाद को स्थान दिया। राजनीतिक अधिकारो की भी मॉग हुई। यह सब कार्य पद्य के अनुकूल न था। कम्बल का काम कमखाब, और दुशाले से नही लिया जा सकता था। पद्य की विशेष आवश्यकता भी न रही। पुस्तको की रक्षा और प्रचार के लिए प्रेसो का आविर्भाव हो चुका था। द्रव्य कठ और विद्या कठ की भी बात न रही प्रेस ने मौखिक परम्परा को अनावश्यक कर दिया था। व्रजभाषा का साम्राज्य पद्य के क्षेत्र मे

गद्य के अनुकूल वातावरण

अक्षुण्ण रहा किन्तु उसकी कोमलता बढ़ते हुए बुद्धिवाद का भार नही सभाल सकती थी।

ब्रजभाषा गद्य

ब्रजभाषा मे गद्य लिखा अवश्य गया किंतु बहुत कम। ब्रजभाषा गद्य मे गोस्वामी गोकुलनाथ रचित चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता और हरि रायजी की वार्ताओ पर टीका का विशेष महत्व है। इनके अतिरिक्त और भी ग्रन्थ रचे गये। वे अधिकांश मे टीकाये थीं या माहात्म्य ग्रन्थ थे, जैसे-बैकुण्ठ मणि शुक्ल लिखित वैशाख महात्म्य जो (१६८०) ओरछा की रानी चन्द्रावती के लिए लिखा गया था। सुरति मिश्र ने सवत् १७६७ मे वैताल पचीसी लिखी और लाला हीरालाल ने सवत् १८५२ मे आइने अकबरी की भाषा वचनिका नाम की एक गद्य पुस्तक लिखी। इसमे बोलचाल की भाषा के साथ फारसी और अरबी के शब्द हैं।

ब्रजभाषा और खड़ी बोली

ब्रजभाषा ब्रज-प्रांत की बोलचाल की भाषा के अतिरिक्त अवधी के साथ व्यापक काव्य भाषा रही है। उनमे स्वाभाविक कोमलता है। वह ओकार प्रधान है घोड़ो भलो, तमाशो आदि। खडी बोली आकार प्रधान है, जैसे घडा, भला, तमाशा आदि। ब्रजभाषा के अकारांत शब्दो के विकारी रूप मे प्राय न लगाकर बहुवचन बनता है जैसे घोडन, फूलन, वैष्णवन आदि; खडी बोली मे इनके बहुवचन रूप होगे घोड़ो फूलो, वैष्णवो होगा। खड़ी बोली ब्रजभाषा की अपेक्षा कुछ खडी या उदण्ड सी लगती है। इसका प्रचलन दिल्ली, मेरठ के आस पास था। इसका पूर्व रूप तो अपभ्रंश काल मे ही मिल जाता है। 'भल्ला हुआ जो मारिया' मे भी आकारांत प्रवृत्ति है। उर्दू के जन्म से पहले ही खुशरो की भाषा मे खडी बोली का रूप है। कबीर मे खडी बोली की यत्र-तत्र झाकी मिलती है 'अजब जमाना आया रे' इस प्रेम रस चाखा नही' अमली हुआ तो क्या हुआ'। भूषण मे भी कही कही ब्रजभाषा की

झलक मिलती है 'तुझे ते सवाई तेरा भाई सलहेरि, पास कैद किया साथ न कोई वीर गरजा' जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा, अफजल का मिलन सिदराज आया सरजा।' खडी बोली मे साहित्यिक गद्य की भी उन्नीसवी शताब्दी के बहुत पहले अकबर के समय मे रचना हो चुकी थी। संवत् १६२० के लगभग गग भाट ने 'चद छद वर्णन की महिमा' नाम की एक गद्य पुस्तक लिखी थी। यही खडी बोली उर्दू की भी जननी है। खडी बोली की भूमि पर ही फारसी अरबी की पच्चीकारी कर उर्दू का निर्माण हुआ। उर्दू का अर्थ है लश्कर, यह लश्कर या फौज की बोली थी। फौजी लोग देश भाषा मे अपनी भाषा के शब्द मिलाकर बोलते थे। फौजी सिपाहियो सरकारी हाकिम और अफसरों और सौदागरो द्वारा इसका व्यापक प्रचार हुआ। खडी बोली बोलचाल की भाषा तो पहले ही से थी। उसको साहित्यिक प्रतिष्ठा पीछे से मिली।

प्रारम्भिक प्रयत्न

जिस प्रकार उन्नीसवी शताब्दी के राजनीतिक इतिहास मे विद्रोह के पूर्व और उसके पश्चात् के दो भाग हैं उसी प्रकार गद्य के प्रयत्नो के भी दो भाग है। एक हरिश्चन्द्र पूर्व और दूसरा हरिश्चन्द्र और उनके पश्चात् का। विद्रोह पूर्व के गद्य के कुछ प्रयत्न तो स्वतंत्र रूप से हुए और कुछ जोन गिलक्राईस्ट की अध्यक्षता मे फोर्ट विलियम के विद्यालय से (जिसकी स्थापना सवत् १८५७ मे हुई थी) हुए। पहले हम स्वतत्र लेखको का संक्षिप्त विवरण देगे।

मुन्शी सदासुखलाल (संवत् १८०३-१८८१)

ये दिल्ली निवासी थे। ये ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी छोडकर ६५ वर्ष की अवस्था मे भगवद्भजन करने के लिए प्रयाग चले गये थे। ये उर्दू फारसी और हिन्दी (भाषा) तीनो मे ही रुचि रखते थे। इनका उपनाम 'निजाम' था। (इनको सुखसागर भी कहते थे) इनको इस बात का दुख था कि रश्मो रिवाजा भाखा का दुनियाँ से उठ गया है। इन्होने बडी श्रद्धा के साथ जन सुलभ भाषा

में जिसमे थोड़ा सस्कृत का भी पुट था 'सुख-सागर' नाम का ग्रन्थ लिखा। इसमे श्रीमद्भागवत् के आधार पर कृष्ण-चरित का वर्णन हुआ है धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण इसमे कथावाचको के तडिताऊपन का थोडा प्रभाव है और कही-कही फारसी-की सी वाक्य शैली की ओर भी झुकाव है। जैसे 'उन के मन' के स्थान में 'मन उसका' 'पढने के बीच' के स्थान मे 'बीच पढने' आदि।

मु शी इंशाअल्ला खाँ इनका जन्म मुर्शिदाबाद मे मु शी माशाअल्ला के यहाँ हुआ था। इन्होने उदय भान चरित या रानी केतकी की कहानी (सं० १८५५-६०) नाम की एक छोटी पुस्तक लिखी। इसके लिखने मे उनका उद्देश्य ऐसी भाषा मे प्रयोग करने का था जिसमे हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले हिंदवी पेन भी न निकले और भाषापन भी न हो' भाषापन से उनका अभिप्राय था संस्कृतमिश्रित हिन्दी।

इशाअल्ला की भाषा की निम्नोलिखित विशेषताएँ है।

१ उन्होने ठेट हिन्दी लिखी किन्तु कही-कही वाक्यो की रचना शैली फारसी की सी है।

२ इनकी लिखी गद्य मे पद्य की सी तुकबन्दी की ओर झुकाव था। यह उस समय की प्रवृत्ति ही थी।

३ वर्तमान कृदन्त विशेषण और विशेष्य के लिंग और वचन एक से ही होते थे, जैसे आतियाॅ-जातियाॅ जो साँसे है।

४ इनकी मे भाषा मे चलतेपन के साथ चट-चटापन भी है। इनके वर्णन सर्वथा भारतीय है।

पंडित लल्लूलाल जी ये आगरा के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे और फोर्ट विलियम में नौकरी करते थे। इन्होने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध की छाया लेकर प्रेम-सागर (संवत्१८०२-१८८२) नाम का गद्य ग्रन्थ लिखा था किन्तु इन्होने मु शी ईशअिल्लाखाॅ की भाॅति यह प्रतिज्ञा नही की थी कि हिंदी छुट

और किसी बोली का पुट न आने देंगे। इसमे थोडा-बहुत ब्रजभाषा का भी पुट है। इन्होंने यथासम्भव विदेशी शब्दों को बचाया है किन्तु नितान्त बहिष्कार नही हुआ है। वैरख जैसे तुर्की के भी शब्द आ गये है। इनकी भाषा सुव्यवस्थित नही है। क्रियाओ के कई रूप है जैसे करि, करिके, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय करिके इनकी लिखी हुई बैताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी मे ब्रजभाषा की अपेक्षा हिन्दुस्तानी की ओर झुकाव है। इनकी भाषा मे तुक और अनुप्रास का बाहुल्य है।

सदलमिश्र

ये आरा (बिहार) के रहने वाले थे और इन्होंने भी लल्लूलालजी की भाँति फोर्ट विलियम की प्रेरणा से 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इनकी भाषा मे 'फूलन्ह', 'सुनि', 'नवाई', 'कहि' आदि ब्रजभाषा के प्रयोग है और जुडाई मतारी, जोन आदि पूर्वी प्रयोग भी है।

धार्मिक लोगों के प्रयत्न

इनके अतिरिक्त ईसाई पादरियो से भी अपने धर्म के प्रचार के लिए हिन्दी का प्रयोग किया। ईसाई पादरियों मे विलियम केरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वामी दयानन्द (स० १८८१) और राजा राममोहनराय जैसे भारतीय धर्म प्रचारको ने भी हिन्दी की महता स्वीकार कर उसको धर्म प्रचार का साधन बनाया। राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसूत्रो का हिन्दी मे अनुवाद कराया और हिन्दी मे एक संवाद पत्र भी निकलवाया। स्वामी दयानन्दजी ने गुजराती होते हुए भी अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थो को हिन्दी मे लिखा। स्वामी दयानन्द का प्रभाव पजाब मे अच्छा पड़ा। पडित श्रद्धाराम फुलेरी ने हिन्दी मे कई ग्रन्थ लिखे और प्रचार कार्य मे भी हिन्दी का प्रयोग किया। अँग्रेजी शिक्षा के साथ हिन्दी शिक्षा का भी प्रचलन हुआ। इस कार्य मे राजा शिवप्रसाद ने बडा योग दिया।

राजा शिवप्रसाद १८२३-१८९०

ये शिक्षा-विभाग मे इस्पेक्टर के पद पर प्रतिष्ठित थे। यद्यपि ये हिन्दी के हिमायती अवश्य थे तथापि ये समय के चलने वाले लोगो मे से थे। वे 'आम-फहम और खास पसन्द' की ओठ मे उर्दू भाषा का पोषण करते थे। उनके हिन्दी हिमायती होने का इतना ही फल हुआ कि स्कूलो मे भारतीय लिपि को महत्वपूर्ण स्थान मिल गया। इतिहास आदि की पाठ्य-पुस्तकों मे (जैसे इतिहास तिमिर नाशक आदि) उनकी भाषा का झुकाव उर्दू की ओर रहा किंतु राजा भोज का सपना या मानव की भाषा मे तत्सम प्रधान हिंदी हो गई है। उन्होने दोनो तरह की भाषा लिखी है किंतु पक्ष समर्थन उन्होने उसी भाषा का किया था जो उर्दू या हिंदुस्तानी कही जा सकती थी हिंदी पर उर्दू—फारसी शब्दो का बोझ लादना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। हिंदी अपनी पथ स्वय ही निश्चित करने लग गई।

प्रचार कार्य

पीछे से हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी। उनका प्रारम्भ तो हरिश्चन्द्र युग में ही हो गया था किन्तु द्विवेदी युग के प्रारम्भ होते ही 'सरस्वती' का जन्म हुआ। उसके द्वारा द्विवेदीजी के हाथो गद्य साहित्य निखार मे आया। बाबू श्यामसुन्दरदास और उनके सहयोगियो ने नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित की। उसके द्वारा तथा साहित्य सम्मेलन आदि के प्रयत्नो से हिन्दी की अभिवृद्धि होती रही। पडित मदनमोहन मालवीय ने नागरी लिपि का अदालतो मे मान कराने का सराहनीय योग दिया था और भी बहुत से प्रचारक इस क्षेत्र मे आये। इस प्रकार एक ओर प्रचार का कार्य चलता रहा। जिससे पाठकों की रुचि हिन्दी की ओर हो, और दूसरी ओर साहित्य-निर्माण का कार्य बढ़ता रहा।

राजा शिवप्रसाद के विपरीत राजा लक्ष्मणसिंह का झुकाव तत्सम प्रधान संस्कृत गर्भित भाषा की ओर रहा।

राजा लक्ष्मणसिंह
सं० १८८६-१९५६

उनकी भाषा मे जैसे शकुन्तला नाटक की गद्य मे कही-कही आगरा की स्थानीय बोली का पुट आ गया है। राजा लक्ष्मणसिंह ने अपनी शैली के प्रचार के लिए 'प्रजा हितैषी' अखबार भी निकाला। राजा साहब ने मेघदूत का भी सुन्दर समश्लोको मे अनुवाद किया था किन्तु वह पद्य में था। राजा लक्ष्मणसिंह के साथ हमको फ्रेडरिक पिन्काट (जन्म सं० १८६३) को न भूल जाना चाहिए। वे हिन्दी के बडे प्रेमी थे। उन्होने राजा लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला नाटक का विलायत से एक सुन्दर संस्करण निकाला था। राजा साहब के बड़े प्रशसक थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द
(सं०१९१७-४१)

भारतेन्दु बाबू ने दोनो राजाओ के बीच का मार्ग प्रशस्त किया। हिन्दी को उन्होने अपना स्वरूप दिया, न उसे उर्दू ही बनने दिया और न उसको आवश्यकता से अधिक सस्कृत गर्भित होने दिया। उनकी और उनके साथ के लोगो की भाषा मे एक विशेष लोच और चलतापन आ गया था। भारतेन्दु बाबू की गद्य की शैली ने विषयानुकूल दो रूप धारण किये। भावावेष पूर्ण चलते हुए विषयो के लिए उन्होने छोटे-छोटे वाक्यो की सरल शब्दावली की शैली को अपनाया और तथ्य-निरूपण के लिए बड़े-बडे वाक्यो में गुम्फित कठिन तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया। भारतेन्दु बाबू की भाषा मे प्रचलन मे आये हुए शब्दों का बहिष्कार नही हुआ। ऐसे शब्दो के प्रयोग तथा घरेलू मुहावरो के प्रयोग के कारण उनकी भाषा मे एक विशेष चलतापन और सजीवता आ गई थी।

हरिश्चन्द्र-युग

विद्रोह के पश्चात् अपेक्षाकृत शान्ति का युग आया। लोगो को सांस लेने के लिए अवसर मिला। अपने और सरकार दोनो के सुधार की ओर ध्यान गया। सुधार के लिए हास्य-व्यङ्ग की शैली बड़ी उपयुक्त ठहरती है। हास्य-व्यङ्ग के सहारे कटु से कटु बात भी निरापद रूप मे लक्ष्य तक पहुँचाई जा सकती है। जिन्दा दिली, भाषा का चलतापन, हास्य-व्यङ्ग और विषय का विस्तार उस समय की मूल प्रवृत्तियाँ थी। भाषा उन दिनो अपनी स्वाभाविक गति से बढ़ी 'वह भाषा के लालन पालन का समय था। शासन और व्याकरण की काट-छाँट का समय द्विवेदी युग मे आया।

निबन्ध साहित्य

निबन्ध गद्य साहित्य का मुख्य अङ्ग है। इस गद्य का निजी रूप दिखाई पडता है और लेखक की शैली का व्यक्तित्व झलकता हुआ प्रतीत होता है। निबन्ध गद्य साहित्य की वह विधा है जिसमे एक विशेष निजीपन और स्वच्छन्दता के साथ अपेक्षाकृत छोटे आकार किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन अथवा लेखक के भावो या विचारो का प्रति-प्रकाशन किया जाता है। हरिश्चन्द्र युग मे यह विधा खूब फूली फली। पडित बालकृष्ण भट्ट (स० १९०१ ७१) पडित प्रतापनारायण मिश्र (स० १९१३ १९५१) उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी (स० १९१९-१९७३) पं० अम्बिकादत्त व्यास (स० १९१४-१९५७) प० राधाचरण गोस्वामी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त (१९२२ १९६४) हरिश्चन्द्र युग के मूल स्तम्भ थे। निबन्धो के अतिरिक्त नाटको और उपन्यासो की भी इसी काल मे नीव पडी। श्री निवासदास (१९०८ १९४४) उसी युग के थे।

नाटक और कहानी साहित्य का उल्लेख अलग अलग किया जायगा।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' निकाला। उसमे बड़े मनोरंजक लेख निकलते थे। मनोरजक साहित्य के उपस्थिति करने मे बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनरायण मिश्र के नाम उल्लेखनीय है। पं० प्रतापनारायण मिश्र की भाषा मे विशेष सजीवता और बोलचाल की भाषा का चलतापन था। उसमे विनोद प्रियता और चुहलबाजी अधिक है। इसी के कारण उन्होने पूर्वीपन का ख्याल न करके बैसवाड़े की ग्रामीण कहावतो और शब्दो का भी प्रयोग किया है। उनके ब्राह्मण अखबार मे समाज-सुधार, हिन्दी प्रचार आदि के सम्बन्ध मे बडे अटपटे लेख निकलते थे। पडित बालकृष्ण भट्ट की शैली बहुत-कुछ मिश्र जी की शैली से मिलती है किन्तु भट्ट जी की शैली मे अपेक्षा कृत सयम है और वे बहुत अश मे ग्रामीणता से बचे रहे है। उनके लेखो मे सँस्कृत के उद्धरण मुहावरे, बहुतायत से रहते थे और वे अँग्रेजी के बडे बडे शब्दों का जैसे National vigour and Strength आदि के प्रयोग मे सकोच नही करते थे और कभी-कभी वे उर्दूपन पर भी उतर आते थे, जैसे करिश्मा, जनून, सौदाई आदि शब्दो का उदारता से प्रयोग किया है।

पंडित बालकृष्ण

'प्रेमघन' जी बोलचाल की चलती भाषा से कुछ बचते रहे। उनकी रचनाओ मे सस्कृत तत्सम शब्दो का बहुतायत से प्रयोग हुआ था। वे शिल्पी की भाँति अपने वाक्यो को गढा करते थे। इनकी भाषा मे अनुप्रास और तुकबन्दी की ओर भी झुकाव था। इनकी आनन्दकादम्बिनी मे समालोचना का सूत्रपात हुआ था।

उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी

यद्यपि गोस्वामी थे किंतु वे धार्मिक कट्टरपन से बहुत दूर थे। उनके समाज-सुधार सम्बन्धी निबन्धो मे पर्याप्त हास्य-विनोद है। विदेश यात्रा विचार और

पं० राधाचरण गोस्वामी

विधवा विरह विवरण आपके दो ग्रन्थ समाज-सुधार की भावनाओं से भरपूर हैं।

श्री बालकृष्ण गुप्त

श्री बालमुकन्द गुप्त ने अपने 'वाङ्गवासी' और 'भारत मित्र' द्वारा हिन्दी की अच्छी सेवा की 'शिवशम्भू के चिट्ठे' मे आपका हास्यव्यग्य राजनीति की ओर केन्द्ररूप रहा। ये ग्रामीणता को बचाते हुए गहरी चुटकी लेने मे सिद्धहस्त थे।

द्विवेदी युग

मूल प्रवृत्तियाँ

जहाँ हरिश्चन्द्र युग मे समाज तथा राजनीति की ओर अधिक ध्यान रहा और जिन्दा दिली, छहल-पहल और हास्य-विनोद की प्रवृत्ति रही वहाँ द्विवेदी युग मे विज्ञान, इतिहास आदि विषयो के गम्भीर विवेचन की ओर लेखको का ध्यान आकर्षित हुआ और व्याकरण की शुद्धता और भाषा की काट-छाँट की ओर प्रवृत्ति बढी, विराम चिन्हो का भी प्रचलन बडा। स्वय द्विवेदी जी सरस्वती मे छपने वाले लेखो का वडा मनोवियोग से सशोधन करते थे। हिन्दी की समृद्धि का काल द्विवेदी युग से ही आरम्भ होता है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा तथा इण्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशन कार्य बडे जोरो से चलने लगा।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
सं० १९२७-१९९५

दौलतपुर (रायबरेली) इनका जन्म हुआ। द्विवेदी जी ने रेल की नौकरी करते हुए भी सस्कृत, अग्रेजी, हिन्दी और उर्दू के ग्रन्थो का बड़ा गम्भीर अध्ययन किया था। आत्म-निर्वाण का उन्होने बड़ा उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया। सन् १९०३ मे उन्होने सरस्वती के सम्पादन का भार अपने ऊपर लिया। द्विवेदी ने वेकन के निबन्धो का अनुवाद किया था और स्वय भी बहुत मौलिक निबन्ध लिखे। उनमे विषय का

विस्तार अधिक है। द्विवेदी जी के निबन्ध अधिकांश में विचारात्मक हैं। उनके सामाजिक निबन्ध रसज्ञ-रंजन और साहित्य-सीकर मे सग्रहीत है। द्विवेदी जी ने गंभीर विषयो को सरल बनाने का प्रयत्न किया है। उनके निबन्धो मे शिक्षक का रूप अधिक है। उनकी शैली अधिकाश मे व्यास शैली है जिसमे विस्तार और फैलाव तथा बात को समझा-समझा कर कहने की प्रवृति रहती है। द्विवेदी जी का झुकाव तत्सम शब्दो की ओर अधिक है किन्तु उन्होने उर्दू शब्दो का वहिष्कार नही किया है।

द्विवेदी-युग के प्रधान लेखको में पडित माधव प्रसाद मिश्र (१९२२ १९६४) जो सुदर्शन के सम्पादक थे, गोपाल राम गहमरी, गोविन्द नारायण, मिश्र चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिह आदि नाम विशेष उल्लेखनीय है। अध्यापक पूर्णसिह ने यद्यपि लिखा थोड़ा तथापि जो कुछ लिखा एक विशेष भावावेश के साथ लिखा। उनकी भाषा के प्रवाह में सभी प्रकार के शब्द बहे चले आते है। उनमे धार्मिक उपदेश का सा उत्साह था। कबीर की भाँति उनके हृदय की सच्चाई ने ही उनकी भाषा को बल दिया था। इस युग मे हरीश्चन्द्र युग मे मौलिकता की अपेक्षा अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक रही। उन दिनो निबन्धो में इतना वैयक्तिकता और जिन्दादिली न थी जितनी कि हरिश्चन्द्र-युग मे थी। विषयो का विस्तार अवश्य हुआ किन्तु गहराई का अभाव रहा। भाषा की साज-सम्हाल अवश्य हुई। उस युग में हिन्दी सप्रयत्न अपनी हीनता दूर कर रही थी और मराठी, बँगला आदि भाषाओ के समकक्ष होने के उद्योग में थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१९२२-२००३)

यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदीयुग में लिखना आरम्भ किया था तथापि वे उनके प्रवाह से बाहर रहे और स्वय ही युग निर्माता बने। द्विवेदी युग में जहाँ अनुकरण की और विस्तार की प्रधानता रही वहाँ आचार्य शुक्ल के युग मे

गाम्भीर्य और मौलिकता आई। चिन्तामणि मे संग्रहीत शुक्ल जी के निबन्धो मे कुछ मनोवैज्ञानिक है और कुछ साहित्यिक है। दोनो प्रकार के निबन्धो मे गम्भीर विवेचन और मानव प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है। शुक्ल जी के निबन्ध विचारात्मक निबन्धो का बहुत ऊँचा आदर्श उपस्थित करते है। उनमे विचारो के पर्त के पर्त खुलते से दिखाई पडते है। शुक्लजी ने शुष्कता के बिना गाम्भीर्य लाने का अपूर्व कौशल-दिखाया है। बीच मे जो हास्य-व्यग्य के छीटे आ गये है वे पाठको के श्रम को दूर करते रहते है। उनकी शैली समास शैली का अच्छा उदाहरण है। समास शैली मे तथ्य कथन अवश्य हुआ है किन्तु साथ ही साथ उदाहरणों द्वारा उनका काठिन्य कम कर दिया जाता है शुक्ल जी के निबन्धों मे तत्सम शब्दो का प्राधान्य है किन्तु उसमे चलन मे आये हुए उर्दू फारसी के शब्दो का यथा स्थान प्रयोग हुआ है, शुक्ल जी की 'चिन्तामणि' 'मगलाप्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित हो चुकी है।

डाक्टर श्यामसुन्दर दास (१९३२ २००३)

शुक्ल जी की भाँति डाक्टर श्यामसुन्दर दास ने भी द्विवेदी से स्वतंत्र होकर लिखा है किन्तु उनके साथ बराबर का सहयोग अवश्य रहा था। हिन्दी के प्रचार और उसको स्थान देने मे श्यामसुन्दर दास जी का बहुत बडा हाथ था। आयोजन और सम्पादन-कार्य कुशल थे। उनके निबन्धो की विशेषता यह है कि वे गम्भीर से गम्भीर विषय को सरल बनाने का प्रयत्न करते थे। उनकी शैली व्यास शैली की ओर अधिक झुकी हुई थी। जहाँ शुक्ल जी विद्वानों के लिए लिखते थे वहाँ बाबूजी विद्यार्थियो के लिए लिखते थे। बाबूजी की शैली भी तत्सम प्रधान है किन्तु उसमे यत्र-तत्र तद्भव शब्द भी मिलते है। फारसी, उर्दू शब्दो की अपेक्षाकृत कमी रहती है। उसमे मुहावरो आदि का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मात्रा में हुआ।

इन युग-निर्माताओ के अतिरिक्त निबन्ध साहित्य मे पण्डित पद्मसिंह शर्मा जिनके निबन्ध पद्मपराग मे संग्रहीत है। हास्यरसावतार पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि लेखको ने द्विवेदी युग की श्री-वृद्धि की थी। नवीन युग एक विशेष साहित्य चेतना लेकर आया है। नवीन युग के लेखक पाश्चात्य साहित्य का अध्यनन लेकर प्रविष्ट हुए थे और उनमे से कुछ को संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। आधुनिक लेखको मे सर्व श्री नन्ददुलारे बाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, शान्ति-प्रिय द्विवेदी, सद्गुरूशरण अवस्थी, सुश्री महादेवी वर्मा, डाक्टर नगेन्द्र, डाक्टर सत्येन्द्र, प्रभाकर माचवे, वासुदेव शरण अग्रवाल, महाराज कुमार रघुवीर सिंह प्रमुख हैं। जैनेन्द्र कुमार मे अध्ययन की अपेक्षा प्रतिभा और कुशाग्र-बुद्धि का अधिक परिचय मिलता है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अंग्रेजी के अध्ययन के बिना ही बड़े सुन्दर आलोचनात्मक निबन्ध लिखे है। डाक्टर रघुवीर सिंह के निबन्धों मे ऐतिहासिकता के साथ साथ भावावेश की मात्रा अधिक है। हजारी प्रसाद द्विवेदी और वासुदेव शरण अग्रवाल के लेखों मे सास्कृतिक पक्ष की प्रबलता रहती है और ये लोग प्राचीन सस्कृत साहित्य से अधिक प्रभावित हैं। महादेव जी के निबन्ध आत्म-कथात्मक होते हुए भी दीन-दुखियो के दुख से प्रभावित है। इनमे पर-दुख-कातरता अधिक है। इनकी भाषा भी बडी साहित्यिक और काव्य-मय है।

आजकल अधिकांश निबध लेखक साहित्यिक और समालोचना की ओर झुके हुए है किन्तु कुछ मे जैसे सियारामशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी, सद्गुरुशरण अवस्थी, महादेवी वर्मा आदि मे निबन्धों का निजीपन और उनकी स्वाभाविक स्वच्छन्दता के दर्शन होते हैं।

नाटक

नाटक साहित्य के प्रधान अंगो मे से है 'काव्येषु नाटक रम्यम्'।

तत्व

नाटक मे अभिनय द्वारा काव्य के विषय को सजीव बना दिया जाता है। भावो की अभिव्यक्ति मे नाटककार की भाषा के अतिरिक्त पात्रो की भाव-भगी भी योग देती है। नाटक के मूल तत्व है-कथावस्तु (Plot) पात्र और उनका चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल, शैली और उद्देश्य। भारतीय नाटको मे रस की प्रधानता दी गई है। इन्ही तत्वो को सफलता पूर्वक समावेश करने पर नाटक की उत्तमता निर्भर रहती है।

हिन्दी नाटकों के वास्तविक जन्मदाता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है। उनसे पहले नाटक लिखे अवश्य गये थे किन्तु वे नाटक कहलाने योग्य न थे। देव जी का भी 'देव माया प्रपच' नाम का नाटक है, किन्तु वह एक प्रकार की आध्यात्मिक कविता मात्र है। यह नाटक प्रसिद्ध देव कवि का नही बतलाया जाता। यही हाल ब्रजवासी कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक का है। प्रबोध चन्द्रोदय' का अनुवाद महाराज जसवन्तसिंह ने भी किया था। श्री बनारसी दास जी जैन लिखित 'समय सार' नाम के इसी प्रकार के एक नाटक का बाबू हरिश्चन्द्र ने और उल्लेख किया है। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ आगरे के दो जैन मन्दिरो मे मौजूद है। किन्तु वह वास्तव मे नाटक नही है। उनमे ससार को नाटक का रूप दिया गया है। उसमे उद्बोधन की कविता है।

पूर्व हरिश्चन्द्र काल

इंगलैण्ड आदि देशो मे नाटको का आरम्भ धार्मिक नाटको से हुआ था। इनको मिस्ट्री प्लेज (Mystry Plays) अर्थात् रहस्य-सम्बन्धी नाटक कहते थे। इनमे धैर्य, दया, पाप, पाखंड, ईर्ष्या आदि ही मूर्तिमान हो नाटको के पात्रो के रूप मे आते थे। 'प्रबोध-

'चन्द्रोदय' आदि नाटक भी इसी प्रकार के हैं। पूर्व-हरिश्चन्द्र-काल के नाटको मे नेवाज कृत 'शकुन्तला' नाटक और हृदयराय कृत 'हनुमान्नाटक' उल्लेखनीय है। महाराज काशिराज की आज्ञा से 'प्रभावती नाटक बना या और रीवाँ नरेश की आज्ञा से 'आनन्द रघुनन्दन' रचा गया; किन्तु इनमे भी नाटक के सब नियमो का पालन नही हुआ था। इनमे छंद का प्रधान्य था। छद मे साधारण जीवन के अगो का वर्णन नही हो सकता और उसी अँश मे छन्द प्रधान ग्रन्थ नाटक के परिणाम से गिरे रहते हैं।

पात्रो के प्रवेश आदि नियमो का पालन करते हुए भारतेन्दुजी के पूज्य पिता गिरधरदासजी ने 'नहुष' नामक सबसे पहला नाटक लिखा था। उसमे इन्द्र और नहुष की कथा है। पहले इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी, उसका स्थान नहुष को मिला, वह राजमद को सयमित न रख सका, 'प्रभुता पाइ काहि मद नाही' वह पद-च्युत हुआ, इन्द्र ने अपना पूर्व-पद प्राप्त किया।

समय के क्रम से रीत्यानुकूल नाटक रचना मे दूसरा नाम राजा लक्ष्मणसिंह का आता है। उनका 'शकुन्तला' नाटक यद्यपि अनुवाद है। तथापि उसमे मूल का सा-सौंदर्य है। इसके पश्चात् भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का नाम आता है। उन्होने एक प्रकार नाट्यकला को पुनर्जीवन दिया। कई संस्कृत नाटको के अनुवाद किये और कई स्वतन्त्र नाटक लिखे। इनके लिखे हुए सोलह नाटक हैं, जिनमे कुछ प्रहसन भी है। भारतेन्दुजी के नाटको मे सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस नीलदेवी, भारत-दुर्दशा, अन्धे-नगरी चन्द्रावली आदि प्रमुख है। इन नाटको मे से कुछ इनके समय खेले भी गये।

हरिश्चन्द युग के अन्य नाटककार

हरिश्चन्द्र जी के समय मे लेखको ने नाटको को अपनाना शुरू किया और पर्याप्त संख्या मे नाटक लिखे गये। उस काल के नाटको मे बाबू तोताराम का 'केतो कृतात', लाला श्रीनिवासदास के 'तप्ता सवरण' और 'रणवीर प्रेममोहनी', बाबू

केशोराम भट्ट-कृत 'सज्जाद संबुल' और 'शमशाद सौसन', गदाधरभट्ट का 'मृच्छकटिक', बाबू बदरीनारायण चौधरी का 'वीरागना-रहस्य अम्बिकादत्त व्यास की 'ललिता नाटक', 'भारत सौभाग्य' और गोसकट और बाबू राधाकृष्णदास के 'दुखिनी बाला' 'पद्मावती' और 'महाराणा प्रताप' नाटक मुख्य है।

विकास की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी के प्रारंभिक नाटक ब्रजभाषा मे लिखे गये थे। उनमे पहले तो गद्य था ही नही और यदि थोडा बहुत था भी तो वह ब्रजभाषा मे धीरे-धीरे गद्य खडी बोली में हो गया और पद्य ब्रजभाषा में ही रहा। भाषा के सम्बन्ध मे नाटको का यह हाल हरिश्चन्द्र युग के बाद मे भी चलता रहा।

इन नाटको के विकास मे दो बाते ध्यान देने योग्य हैं। एक तो जैसे-जैसे समय आगे बढता गया। वैसे-वैसे देवता, राक्षक, यक्ष, गधर्व आदि दैवी पात्रो की कमी होती गई। देवी चमत्कार और आद्भुत्व के स्थान मे मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार और उसके भावो का सघर्ष अधिक दिखाया जाने लगा। नाटक का मनुष्य जीवन से विशेष सम्बन्ध हो गया। दूसरी बात यह है कि क्रमश. पद्य के स्थान मे गद्य का प्रवेश होने लगा। पद्य साधारण जीवन की भाषा नही समझी जाती। पारसी थिएट्रीकल नाटक कम्पनियो के प्रभाव मे लिखे हुए नाटको मे उर्दू के साथ साधारण बोल-चाल मे भी गाने रहते थे।

संस्कृत से अनुवाद

वर्तमान-युग मे अथवा यो कहिए कि हरिश्चन्द्र युग और वर्तमान युग के बीच मे रायबहादुर लाला सीतारामजी उपनाम 'भूप' ने बहुत से संस्कृत के नाटको का अनुवाद कर हिन्दी का बहुत उपकार किया। यह बड़ी लज्जा का विषय था कि सस्कृत के नाटको का अँग्रेजी मे तो अनुवाद हो और हिन्दी इस गौरव से बञ्चित रहे। इस सम्बन्ध मे स्वर्गीय लाला सीताराम जी ने भागीरथ का-सा काम

किया था। स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न ने महाकवि भवभूति कृत, 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' के बहुत ही सुन्दर और सरस अनुवाद किये हैं। जिस प्रकार राजा लक्ष्मणसिंह के 'शकुन्तला' के अनुवाद ने हिन्दी मे कालिदास की कीर्ति का स्थायित्व प्रदान किया वैसे ही सत्यनारायण जी के उत्तर रामचरित के हिन्दी अनुवाद ने भवभूति की ख्याति को हिन्दी मे प्रसारित किया।

शेक्सपीयर के अनुवाद

शेक्सपीयर के नाटको का भी हिन्दी मे अनुवाद हो गया है। बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० ने बहुत से नाटको का अनुवाद किया है। बाबू प्रेमचन्द जी ने आधुनिक कवि गाल्सवार्दी के नाटको का अनुवाद किया, किन्तु उनमे यह बात नही जो उनके उपन्यासो मे है। इन अनुवादो के अतिरिक्त बहुत से मौलिक नाटक भी लिखे गये है और वे रंगमंच पर खेले भी जाते है।

बीच की कड़ी

धीरे-धीरे पारसी नाटक कम्पनियो का प्रभाव कम होता गया और उर्दू का भी प्रभुत्व घटने लगा। बीच में एक कडी ऐसी रही जिसमे पारसी रंगमंच का प्रभाव रहा किन्तु साहित्यिकता की ओर रुचि बढती दिखाई देती थी। ऐसे नाटककारो मे कथावाचक प० राधेश्याम और नारायण प्रसाद 'बेताब' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'श्रीकृष्ण अवतार', 'रुक्मिणी मंगल' और 'वीर अभिमन्यु' पं० राधेश्याम के नाटकों मे अच्छे गिने जाते हैं। बाबू नारायण प्रसाद के नाटको मे 'रामायण और महाभारत' प्रधान हैं ये नाटक रंगमंच के तो बहुत उपयुक्त है किन्तु इनमे साहित्यिकता कुछ कम है, उर्दू का भी पुट है और हिन्दी की नाटकीय भाषा का विकास कम दिखाई देता है। हाँ, इतना अवश्य मानना पडेगा कि इनके द्वारा हिन्दी को रंगमंच पर अधिकार मिल गया और उर्दू के नाटको का बोलबाला न रहा। बाबू हरिकृष्ण जौहर के सामाजिक नाटक अच्छे है। कृष्णाचन्द के नाटको में राजनीतिक पुट है किन्तु इनमे उर्दूपन

अधिक है। व्याकुल जी का 'बुद्धदेव' नाटक रंगमंच की दृष्टि से बहुत अच्छा है।

जयशंकर प्रसाद

साहित्यिक दृष्टि से बाबू जयशंकर प्रसाद का कार्य बहुत सराहनीय है। 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ, 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'विशाख आदि उनके कई उच्चकोटि के नाटक हैं, जिनमें उन्होंने अपनी गवेषण-शक्ति और सूक्ष्म-दृष्टि का परिचय दिया है। उनके अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त में बौद्धकालीन भारत की सुन्दर झलक मिलती है। वे प्राचीन वातावरण के अवतरित करने में बड़े सिद्धहस्त थे। प्रसाद जी के नाटको में विशेष कर चन्द्रगुप्त में भारतीय संस्कृति की अन्य संस्कृतियों से श्रेष्ठता दिखाई गई है। इनके नाटक कलामय होते हुए भी अत्यन्त क्लिष्ट हैं और साधारण रंगमंच के योग्य नहीं रहते। उनमें प्रसाद गुण की कमी है उनके लिए विशेष रंगमंच, अभिनेताओं और शिक्षित एवं सुसंस्कृत दर्शकों की आवश्यकता है। इस बात को स्वीकार करते हुए भी उनमें हमको प्राचीन सभ्यता की अच्छी झलक मिलती है। प्रसाद जी के नाटको में अन्तर्द्वन्द्वों के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उन नाटकों के गीत और सूक्तियाँ साहित्य की एक विशेष निधि हैं।

अन्य नाटककार

प्रसाद जी के अतिरिक्त पं० बदरीनाथ भट्ट, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद' पं० गोविन्दबल्लभ पन्त तथा श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी' आदि कई सज्जनों ने अच्छे-अच्छे नाटक लिखे हैं। भट्ट जी के नाटको में हास्यरस का पुट अधिक है। पं० माखन लाल जी का 'कृष्णार्जुन युद्ध', 'मिलिंद' जी का 'प्रताप-प्रतिज्ञा', पंत जी के 'वरमाला' और 'राजमुकुट' और प्रेमी जी के १ 'रक्षा-बन्धन', २ 'स्वप्नभंग,' शिवा-साधना,' और 'प्रतिशोध' आदि नाटक साहित्यिक दृष्टि से अत्युत्तम होने के साथ रंगमंच की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते हैं। प्रेमी जी के इन दो नाटकों में राष्ट्रीय भावना

से प्रेरित हिन्दू मुसलमानो में पारिस्परिक सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। अधिकाश में इनके नाटको का कथानक इतिहास पर आधारित रहते हैं। इनके पात्र प्राय उदात्त भावो से प्रेरित रहते है और वे हमारे श्रद्धा के भाजन बन जाते है। इनके नाटको मे वातावरण का अच्छा चित्रण रहता है जो कि उनके कथानक के समझने मे सहायक होता है। इनके नाटकों मे कथोपकथन मे सक्षिप्तता की प्रवृत्ति नही है वे विस्तार की ओर अधिक झुके हुए है। हिन्दी जगत में इनका आदर हुआ है और साहित्य-समितियो द्वारा इनमे से कोई नाटक समय समय पर खेले भी गये है।

श्री जी० पी० श्री वास्तव के नाटको में हास्य की मात्रा अधिक है किन्तु वह हास्य अधिकाश में धौल-त्रप्पे और हास्यय परिस्थितियो के उपस्थित करने का है। प० रामनरेश त्रिपाठी का 'जयन्त' और श्री सुमित्रानन्दन पंत का 'ज्योत्सना' नाटक साहित्यिक दृष्टि से उत्तम निकले है। प० पृथ्वीनाथ शर्मा ने 'दुविधा' और अपराधी' नामक सामाजिक नाटक लिखे है। वे यूरोपीय ढग पर लिखे गये है, पद्य का इनमे बिलकुल अभाव है। रगमंच पर खेलने के लिए वे बहुत उपयुक्त है।

आधुनिक नाटकों की प्रवत्तियाँ

आधुनिक नाटक प्राय. वर्तमान समस्याओ से सम्बन्ध रखते हैं। वे आकार-प्रकार में भी छोटे से होते है। उनमें रगमच के संकेत विस्तृत होते है जो उपन्यासो के वातावरण वर्णन का स्थान लेते हैं। आधुनिक नाटको मे वस्तुवाद का प्राधान्य होता है।

श्री मिश्र जी आधुनिक नाटककार

प० लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'सयासी', 'राक्षस का मन्दिर', 'राजयोग', 'सिदूर की होली' आदि आधुनिक समस्यात्मक नाटक के अच्छे उदाहरण हैं। उन्होने 'गरुडध्वज' 'नारद की वीणा' 'वत्सराज'

आदि ऐतिहासिक नाटक भी लिखे है। 'वत्सराज मे मिश्र जी के इतिहास प्रसिद्ध वत्सराज उदयन की कीर्ति को अमर बनाया है।

जीवन वृत्त इनका जन्म सन् १९०३ मे हुआ था

मिश्र जी के समस्यात्मक नाटको मे इब्सन का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है इनका शिल्प विकास इब्सन का-सा है किन्तु नाटको के कथानक की सामग्री और जीवन की समस्याएँ भारतीय हैं यद्यपि वे कुछ पश्चिमी रग से रंगी हुई है। इनके नाटको मे आधुनिकतम नाटको की प्रवृत्तियाँ जैसे रग मंच के सकेतो का बडा होना यथार्थवाद और बुद्धिवाद दिखाई पडते हैं। मिश्र जी के नाटको मे प्रसाद की तरह अतीत की ओर दृष्टि नही है। वरन् वर्तमान की ओर ही उनकी दृष्टि आकृष्ट हुई है। क्योकि यथार्थवाद का पोषण भली प्रकार से वर्तमान की स्थिति से सम्बन्ध रखने वाले नाटको मे ही हो सकती है मिश्रजी ने समाज की व्यापक समस्याओ से लेकर व्यक्तियो की भी समस्याएँ ली है। इनमे नारी की समस्याओ को प्राधान्य मिला है। उनका नवीनतम नाटक 'दशाश्वमेध' है।

सेठ गोविन्ददास जी सेठ गोविन्ददास जी ने 'उषा', 'हर्ष', 'नवरस', 'सेवापथ' आदि कई नाटक लिखे है। 'प्रकाश' के प्रारम्भ में थोड़ा प्रतीकवाद (Symbolism) से काम लिया गया है और उसमे वर्तमान राजनैतिक आन्दोलनो का अच्छा विवरण है। सेठ जी के नाटको की संख्या बढती ही जा रही है।

प्रसादजी कृत 'कामना' की भाँति श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी लिखित 'छलना' आदि कई नाटच रूपक भी लिखे गये है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क का 'स्वर्ग की झलक' और 'उदयशकर भट्ट का 'कमला' नये ढग के नाटको के अच्छे उदाहरण हैं। भट्ट जी ने पौराणिक नाटको के अतिरिक्त विश्वमित्र' आदि कई गीत-नाट्य भी लिखे है। हाल में ही उनका 'शकविजय' नाम का एक ऐतिहासिक नाटक प्रका-

शित हुआ। आपके नवीन नाटकों में 'कुमारसम्भव' बहुत कलामय है। उसमें आचार और कला की प्रतिद्वंदिता में कला को प्रधानता दी गई है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा भी अब नाटक के क्षेत्र में आये हैं। उनके 'हंस मयूर' ने विशेष ख्याति पाई है। उसमें बतलाया गया है, सफलता के लिए हंस की सी कोमल वृत्ति और मयूर की सी सर्पो को भक्षण कर जाने वाली कठोर मनोवृत्ति के समन्वय की आवश्यकता है।

डाक्टर रामकुमार वर्मा

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने कुछ एकाकी नाटक लिखे हैं। 'पृथ्वीराज की आँखें' नाम के संग्रह में उनके एकाकी नाटक प्रकाशित हुए हैं। 'रेशमी टाई' और 'चारुमित्रा' नाम के दो एकाकी संग्रह और निकले हैं। उनका 'अट्ठाईस जुलाई की शाम नामक कई कालेजों में सफलता पूर्वक अभिनीत हो चुका है।

वर्माजी ने अपने नाटकों में पश्चिमी और पूर्वीय दोनों ही नाट्य कलाओं का समावेश का सुखद समन्वय किया है। उनके नाटकों में ऐतिहासिक सामाजिक प्रमाणिक घटनाओं का चित्रण है, उनमें नए युग की भावनाओं के साथ राष्ट्रीयता और मनोवैज्ञानिकता को आश्रय मिला है। वर्माजी ने अपने एतिहासिक नाटकों में तत्कालीन परिस्थितियों और वातावरण का बड़ा सजीव अवतरण किया है। उनका यह चित्रण इतिहास के गम्भीर अध्ययन पर अवलम्बित है। पात्र और परिस्थिति ऐतिहासिक होते हुए भी उनके हृदयगत भावना मानव-जाति की भावनाएँ हैं। और वे आधुनिक समय में भी मनो-वैज्ञानिक की दृष्टि से ठीक उतरती है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

आपका जन्म सन् १९१० ई० में जालंधर नगर में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा लाहौर में हुई और पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० एल० एल० बी० की उपाधियाँ प्राप्त की है। पहले आप उर्दू में लिखते थे। सन् १९३५ के लगभग आपने हिन्दी में लिखना आरम्भ

किया और शीघ्र ही हिंदी लेखको मे प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। आपने नाटको के अतिरिक्त कहानियाँ उपन्यास और कविताएँ भी लिखी, आपके लिखे एकांकी संग्रहो मे देवताओ की छाया मे, छटा बेटा, चरवाहे, कैदी की उडान मुख्य हैं। आपके नाटको के कथानक मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन से लिए गए है आपके नाटक हास विलास के चित्रण की अपेक्षा जीवन के करुणामय पक्ष की ओर अधिक झुके हुए दिखाई देते हैं उनका झुकाव उनके उपनाम "अश्क"-(आँसू) को सार्थक करता हैं। आपके नाटको मे समाज के प्रति एक तीखा व्यंग रहता है। और उनमे सामाजिक चित्रण के साथ प्रकृति का बडा सजीव चित्रण होता है।

इन महानुभावो के अतिरिक्त सर्वश्री सुदर्शन, उदयशंकर भट्ट, गणेश प्रसाद द्विवेदी, जगदीशचन्द माथुर आदि ख्यातनामा लेखक हिंदी के इस अंग की पूर्ति कर रहे है। समय की बचत और अभिनय की सुगमता के कारण एकांकी नाटक बहुत लोकप्रिय होते जा रहे है। रेडियो नाटक भी प्राय. एकाँकी होते हैं, किन्तु उनका शिल्प-विधान कुछ भिन्न होता है। पं० उदयशंकर भट्ट के "एकला चलो रे, नामक रेडियो नाटक मे रवि बाबू के प्रसिद्ध गीत की महापुरुषो के जीवन से पुष्टि की गई है। आजकल श्री विष्णु प्रभाकर ने रेडियो नाटक लिखने मे विशेष ख्याति पाई है।

कथा-साहित्य

महत्व

कथा साहित्य सबसे अधिक लोकप्रिय होता है और उससे आबालवृद्ध सभी उसमें रुचि रखते हैं। इसी से उसका विस्तार भी बहुत है। भारतवर्ष प्राचीन-काल से कथा-साहित्य के निर्माण मे अग्रगण्य रहा है किन्तु वह अधिकाँश मे ऐसी कहानियो का साहित्य रहा है जिसमे मनुष्य के साथ जानवर भी भाग लेते रहे है। हमारी जातक कथताएँ, वृहत्कथा, पचतंत्र, हितोपदेश आदि ने

विश्व ख्याति पाई है। फ़ारसी की 'अनवार सहेली' पचतंत्र का ही अनुवाद है। यूनानियो की ईसप कथा भी हमारे यहाँ से प्रभावित है। कथा-साहित्य के दो भाग है—उपन्यास और कहानी। उपन्यास और कहानी के तत्व तो एक से होते है दोनों मे ही कथावस्तु पात्र, चरित्र-चित्रण, वातावरण, शैली और उद्देश्य होते हैं किन्तु कहानी में एक तथ्यता अधिक रहती है। वह अपने छोटे मुँह से बडी बात कहने का प्रयत्न करती है। उसमे अधिक घुमाव फिराव नही होता है। उसमे बिना मतलब प्रवेश वर्जित रहता है। उसका शीर्षक जितना सार्थक और कथानक से सम्वन्धित होता है उतनी ही कहानी अच्छी समझी जाती है। हमारे यहाँ प्राचीन साहित्य मे वाण की कादम्बरी और दण्डी का दशकुमार चरित उपन्यास कोटि मे आ सकते हैं किंतु उनमे काव्य के अलंकार अधिक है।

प्रारम्भिक उपन्यास

आजकल के से उपन्यासो का श्री गणेश भारतेन्दु युग मे श्रीनिवासदासजी (सं० १६०२—१६४४) द्वारा हुआ था। उनके 'परीक्षागुरु' मे पचतंत्र की सी उपदेशात्मक प्रवृत्ति अधिक है और बीच बीच मे नीति के उद्धरण रक्खे गए है। हिंदी उपन्यास मे जो दूसरी प्रवृत्ति आई वह तिलस्मी उपन्यासो की थी। वाबू देवकीनंदन खत्री (स० १६१७-१६७०) ने अपने उपन्यासो द्वारा (चंद्रकाता, चंद्रकाता संतति, भूतनाथ आदि) एक युगातर उत्पन्न कर दिया। वे जनरुचि आकर्षित करने में पूर्णतया समर्थ हुए और उनके उपन्यासो के कारण बहुत से लोगो ने हिंदी सीखी।

लोकरुचि को आकर्षित करने मे दो नाम और उल्लेखनीय है एक पडित किशोरीलाल गोस्वामी जिन्होने प्रेम और समाज सम्बन्धी उपन्यास लिखे। उनमे ऐतिहासिकता का भी थोडा बहुत पुट था, किंतु भावुकता का वाहुल्य रहा। अँगूठी का नगीना, लखनऊ की

कत्र, चपला, तारा आदि इनके उपन्यास हैं दूसरा नाम है श्री गोपालराम गहमरी, ये एक तीसरी प्रवृत्ति के उन्नायक थे। इन्होने जासूसी उपन्यास लिखे। तिलस्मी उपन्यासो मे जहाँ आगे का रहस्य खुलता है वहाँ जासूसी उपन्यासो मे पिछले रहस्य का पता चलता है। दोनो ही प्रकार के उपन्यासो मे कौतूहल और घटना की प्रधानता रहती है। तिलस्मी उपन्यासो मे थोडा जादू का भी प्रभाव रहता है किंतु जासूसी उपन्यासा मे बुद्धि कौशल का अधिक परिचय मिलता है। प्रारम्भिक उपन्यासकारो मे प० लज्जाराम महता धूर्त रसिकलाल और आदर्श हिंदू तथा ब्रजनदनसहाय (सौदर्योपासक) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमे भावुकता के साथ समाज सुधार की ओर झुकाव है। पडित अयोध्यासिह उपाध्याय ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' लिखा किंतु उसमे औपन्यासिकता की अपेक्षा भाषा का प्रयाग अधिक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक उपन्यासों मे कौतूहल की तृप्ति के साथ घटना और भावुकता का बाहुल्य रहा और घटनाओ मे भी वास्तविकता की ओर कम ध्यान रहा। कही-कही उपदेशात्मक का पुट अवश्य मिलता है।

मुंशी प्रेमचन्द

(स० १९३७ १९९३) इनका असली नाम धनपतराय था। ये शिक्षा विभाग मे नौकर थे। किंतु इन्होने आत्म-गौरव की रक्षा के लिए वहाँ से त्यागपत्र दे दिया था। मुशीजी से उपन्यास साहित्य का एक नया युग प्रारम्भ होता है। इन्होने चरित्रप्रधान उपन्यासों की सृष्टि की। ऐसे उपन्यासो मे पात्रो के व्यक्तित्व पर अधिक ध्यान दिया जाता है और उपदेशात्मक सीधी रीति से कम होकर चरित्र द्वारा अधिक व्यञ्जित होती है। मुशी प्रेमचंदजी के उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे। उनमे वास्तविकता की ओर अधिक ध्यान है किंतु उनके पात्र वास्तविकता मे ही सीमित नही दिखाई पड़ते। वे ऊँचे उठते है। मुंशी प्रेमचन्दजी मानवतावादी थे और

गाधीवाद का उन पर पूरा पूरा प्रभाव था। उन्होंने गरीब से गरीब मे और नीच से नीच मे भी सत्य और सदाचार की देवी चिनगारी के दर्शन कराये हैं। वे गाव के जीवन के चित्रण मे बडे कुशल थे। उन्होने महलो के रहने वालो को झोपडियों के ख्वाव दिखलाए। मुशीजी ने अपने उपन्यासो और कहानियो में जीवन का क्षेत्र व्यापक बना दिया था। उसे केवल भावातिरेकमय प्रेम मे ही सीमित नही रखा था। कवीर और गाधी की भाति ये भी हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती थे, इनके उपन्यासो और कहानियो मे मुसलमानो के जीवन के वडे सुन्दर चित्र आए है। उन्होने भाषा भी ऐसी लिखी थी जो सर्ववोधगम्य होती हुई ग्रामीणता से दूर थी। उसमे एक साहित्यिक गौरव था। वह पात्रानुकूल वदलती रही है। इनकी भाषा मे उर्दू का सा चलतापन है और मुहावरो के प्रयोग ने उसे और भी सजीवता प्रदान कर दी है, उनके मुख्य उपन्यास हैं (१) सेवा सदन (२) निर्मला (३) गवन (४) प्रतिज्ञा (५) वरदान (६) प्रेमाश्रम (७) रगभूमि (८) कर्मभूमि (९) कायाकल्प और (१०) गोदान। इनकी कहानियों के कई संग्रह निकलते हैं किंतु मानसरोवर (आठभाग) मे वे सव आगई है।

जयशकरप्रसाद (सवत् १९४६—१९९४) प्रसादजी ने तीन ही उपन्यास लिखे है ककाल, तितली, और इन्दुमती जो अधूरा है। ककाल में यथार्थवाद को मात्रा कुछ अधिक है। उसमें समाज के ककाल होने के दर्शन कराये गए है, फिर भी उसमे एक रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा गोस्वामी के व्याख्यान द्वारा तैयार की गई है। चरित्रचित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत अच्छा है। तितली मे ग्रामसुधार के सहारे आदर्शवाद को कुछ आश्रय मिला है।

जयशंकर प्रसाद
(सं० १९४६-१९९४)

प्रसाद जी ने कहानियाँ भी लिखी है। उनमे घटना की अपेक्षा भावुकता को अधिक स्थान मिला है। उनकी कहानियो मे वैसे तो

सभी स्तर के लोग आये है किन्तु इसका मन ऐतिहासिक कहानियो मे अधिक रहा है। प्राचीन वातावरण के उपस्थित करने मे ये कुशल हस्त थे। नाटको की भाति इनकी कहानियो मे अच्छे अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित हुए है। पुरस्कार नाम की कहानी मे वैयक्तिक प्रेम और जन्मभूमि प्रेम का संघर्ष है और अपने लिए प्राण दड का पुरस्कार चाह कर नायिका मधूलिका ने द्वन्द्वो का शमन ही नही किया वरन् कहानी के नाम को भी सार्थक कर दिया है। प्रसाद जी की भाषा प्रेमचन्द की भाति पात्रो के साथ बदलती नही है। वह सदा एक रस रहती है। इनकी भाषा संस्कृत गर्भित साहित्यिक और प्राजल है। प्रसादजीके पात्रो पर उनका दार्शनिक और पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व लदा रहता है।

प्रसादजी के कई कहानी संग्रह निकल चुके है। उनमे से आकाश दीप, प्रतिध्वनि और इद्रजाल मुख्य है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक', भिखारिणी' और 'मा' इनके उपन्यास है। मणिमाला और चित्रशाला कहानियो के संग्रह है। ये अधिकाश मे मुंशी प्रेमचन्दजी के पद चिन्हो पर चले है। किन्तु ग्रामीण जीवन को ओर ये इतने नही झुके है। उपन्यासों की अपेक्षा आपकी कहानियाँ अधिक सफल हुई है। आप की कहानियो मे शहरी पारिवारिक जावन के चित्र है और पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी है।

वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्मा आप झासी के रहने वाले है। आपने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है। उनमे गढ कुण्डार, विराट की पद्मिनी, मृगनयनी मुख्य है, ऊपर के दो उपन्यासो मे औपन्यासिक कल्पना अधिक है; झाँसी की रानी मे ऐतिहासिकता अधिक है। इनके उपन्यासो के वातावरण चित्रण मे स्थानीय रग प्रचुर मात्रा मे रहता है। इनको बुदेलखड की प्रकृति से प्रेम है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव

श्रीवास्तवजी ने तीन उपन्यास लिखे हैं-विदा, विकास और विजय इनमे स्त्री स्वातंत्र्य के विषय को प्राधान्य मिला है। इन उपन्यासो मे जिस समाज का चित्रण है। उसमे सभी प्रकार के लोग, है कुछ विदेशी रमणियाँ भी आ गई है।

जैनेन्द्रकुमार

आपने तपोभूमि (ऋषभचरणजी के साथ) परख, सुनीता, त्याग-पत्र और कल्याणी नाम के उपन्यास लिखे है, एक रात, दो चिड़ियाँ और नीलाम देश की राजकन्या आपके कहानी संग्रहो के नाम है, मुंशी प्रेमचन्द के पात्र जहाँ अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है जैनेन्द्रजी के पात्र अपने व्यक्तित्व मे निराले हैं और उनका निरालापन कही-कही असाधारणता की कोटि मे आ जाता है। जैनेन्द्रजी के उपन्यासो से मनोवैज्ञानिकता कुछ अधिक है। जैनेन्द्रजी की कहानियो मे भावुकता और करुणा की मात्रा बहुत है और वे सब उनकी दार्शनिकता से प्रभावित है।

अन्य लेखकगण (जन्म ६०२)

प्रमुख उपन्यास और कहानी लेखको के अतिरिक्त सुदर्शन, गोविंद वल्लभ पत, भगवतीचरण वर्मा, पाडेय वेचन शर्मा उग्र, चतुरसैन शास्त्री, शिव पूजन सहायजी अज्ञेयजी भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सियाराम शरण गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, उषादेवी मित्रा श्रीनाथसिंह आदि कई और भी लेखक है।

विभिन्न प्रवृतियाँ

हिन्दी उपन्यास और कहानियो में कई प्रवृत्तियाँ चल रही है। इनके विभाजन कई दृष्टिकोणो से किए जा सकते है। वादो की दृष्टि से इस समय तीन प्रमुखवाद चल रहे है जिनमे दो राजनीतिक है और एक मनोवैज्ञानिक। राजनीति वादो मे गाधीवाद और मार्क्सवाद प्रमुख है। गाधीवादी लेखको मे मुंशी प्रेमचन्द, सियाराम शरण गुप्त,

धनीराम प्रेम, चण्डीप्रसाद हृदयेश आदि प्रमुख है। मार्क्सवादी लेखकों मे नरोत्तम नागर, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन आदि प्रमुख है। मनोवैज्ञानिक लेखको मे जैनेन्द्रकुमार अज्ञेय, इलाचन्द जोशी आदि उल्लेखनीय है। ये लोग फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र से प्रभावित है। समाज सुधार का भी युग अब खतम सा हो गया। आजकल के लेखकगण व्यक्ति और वातावरण के चित्रण मे अधिक रुचि रखते है। व्यक्ति की बुराइयो के लिए वे समाज को उत्तरदायी ठहरते है और पाप-पुण्य की भी अब वैसी निश्चित सीमाये नही रही हैं जैसी कि पहले थी (देखिए भगवती चरण वर्मा की चित्रलेखा)। आजकल के उपन्यास विचार प्रधान होते जा रहे है।

छोटी कहानी

यद्यपि यह कहना तो कठिन है कि हिन्दी की पहली कहानी कब और किसने लिखी तथापि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इनका प्रचार करने मे 'सरस्वती' और 'इन्दु' का बहुत बडा हाथ है हिन्दी कहानियो का लिखा जाना स० १९५७ से प्रारभ हुआ। हिन्दी कहानी के लेखको मे श्री किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिजा कुमार घोष (पार्वतीनन्दन), 'बग महिला', पडित रामचन्द्र शुक्ल, मास्टर भगवानदास आदि हैं। इन लोगो की लिखी हुई कहानियो मे कुछ तो मौलिक है और कुछ बगला से अनुवादित। इसके पश्चात स्वानामधन्य जयशंकर प्रसादजी ने इस क्षेत्र मे अवतरित होकर छोटी कहानियों मे एक प्रकार से प्राणप्रतिष्ठा कर दी। उनकी आकाशदीप, पुरस्कार प्रतिध्वनि, चित्रमन्दिर आदि कहानियो ने एक नया युग उपस्थित कर दिया। उनकी कहानियो मे स्वर्णिम आभा से विभूषित प्राचीनता के वातावरण को उपस्थित करने के अतिरिक्त अच्छे चित्रण आये है। उनमे हमको बड़े सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व भी दिखाई देते हैं। पुरस्कार नाम की कहानी मे

राजभक्ति और वैयक्तिक प्रेम का सघर्ष है। आत्म बलिदान का पुरस्कार मांगकर मधूलिका इस द्वद्व का शमन कर देती है और कहानी के नाम को भी सार्थक कर देती है। इनके पश्चात् विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक कहानी के क्षेत्र मे आये। इनकी कहानियाँ अधिकतर सामाजिक हैं। इनकी बहुत सी कहायियो मे शहरी जीवन के अच्छे चित्र आये है। इनकी कहानियाँ वार्तालाप प्रधान है।

सुदर्शन जी का नाम जी कौशिक जी के साथ लिया जाता है। इनकी कहानियो के कुछ कथानक राजनीतिक आन्दोलन से भी लिए गए हैं। इनकी 'न्याय मन्त्री' नाम की कहानी ऐतिहासिक है। इसने बहुत लोक-प्रियता प्राप्त की है।। इनकी लिखी हुई 'हार मे जीत' शीर्षक कहानी मे उच्च मानवता के दर्शन होते हैं। सुदर्शन जी शहरी मध्यवर्ग के प्रतिनिधि कहे जा सकते है। वास्तव मे सुदर्शन जी और कौशिक जी प्रेमचन्द जी के साथ हिन्दी कहानी लेखकों की बृहत् त्रयी मे रक्खे जा सकते है।

मुंशी प्रेमचंद जी ने हिंदी कहानियों मे जान डाल दी है। इन्होने अपनी कहानियो द्वारा साधारण मनुष्यो मे भी उच्च मानवता के दर्शन कराये है। 'पच परमेश्वर' मे पद का ऊत्तरदायित्व दिखलाया है। 'बडे घर की बेटी' बुरे अर्थ मे भी बडे घर की बेटी है और भले अर्थ मे भी अपने नाम को सार्थक करती है। जो देवर और पति के बीच मे लडाई का कारण बनती है वही उनमे मेल करा कर अपने हृदय की मानवता का परिचय देती है। 'शतरज के खिलाडी' आदि कहानियाँ जीवन के अच्छे चित्र है। 'ईदगाह' मे गरीब मुस्लिम जीवन की झॉकी मिलती है। मुंशी जी की कहानियाँ अधिकांश घटना-प्रधान है किंतु उनमे भावुकता का भी पुट पर्याप्त मात्रा मे मिलता है।

श्री चण्डीप्रसाद हृदयेश ने जो कहानियाँ लिखी है वे कहानी की अपेक्षा गद्य काव्य का नाम अधिक सार्थक करती है। उनकी कहानियो मे भाषा का चमत्कार अधिक है।

प्रेमचन्द जी के बाद कहानी साहित्य में जैनेन्द्र जी का नाम आदर से लिया जाता है। आपकी कहानियो मे युग की नई भावनाओं के दर्शन मिलते है। आपकी 'खेल' नामक कहानी को पढकर कविवर मैथिली-शरण गुप्त ने कहा था कि हिंदी मे रविबाबू को शरद् बाबू हमको मिल गये और एक साथ मिले। जैनेन्द्र की कहानियो मे कथानक अथवा तथ्यनिरूपण का इतना महत्त्व नही जितना कि मनोवैज्ञानिक चित्रण का। फिर भी बीच-बीच मे वे बड़ी तथ्य पूर्ण बाते कह देते हैं।

चन्द्रगुप्त जी 'वद्यालङ्कार ने बडी सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। आपकी 'ताँगेवाला' 'कखग', 'डाकू' 'चौबीस घण्टे' आदि कहानियो मे अधिक प्रसिद्धि पाई जाती है। 'चौबीस घण्टे' नाम की कहानी मे क्वेटा भूकम्प का हाल है। 'डाकू' मे दरबार साहब के धार्मिक वातावरण का अच्छा चित्रण है। 'एक सप्ताह' नाम की कहानी पात्रो के रूप मे लिखी गई है।

अज्ञेयजी वात्स्यायन के नाम से ज्ञेय हो गये है। आपने कहानी कला मे विशेष निपुणता प्राप्त की है। आपकी कहानियो मे विप्लव और विस्फोट की सी भावना रहती है। आपकी 'अमर वल्लरी' नाम की कहानी मे एक विशेष काव्य भावना को लेकर पीपल वृक्ष का जीवन वृत्त आया है। यह एक प्रकार का शब्द-चित्र है।

श्री अन्नपूर्णानद और श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने विनोदपूर्ण कहानियाँ लिखी है। श्री चतुरसेन शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। उनका भाषा-प्रभाव प्रसशनीय है। वर्तमान कहानी-लेखकों मे सियारामशरण गुप्त, विनोदशंकर व्यास, बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, पहाडी, यशपाल, राधाकृष्ण प्रभृति महानुभावो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पतजी की पाँच कहानियो मे पान वाले आदि के शब्द-चित्र देखने को मिलते है।

हिन्दी की स्त्री लेखिकाओ में शिवरानी देवी, सुभद्रा कुमारी चौहना, कमला देवी चौधरानी, उषा देवी मित्रा, चन्दकिरन सोनरिकशा, होमवती तथा चन्द्रावती जैन प्रभृति देवियो ने विशेष ख्याति पाई है। श्रीमती होमवती देवी की कहानियो का संग्रह 'निसर्ग' नाम से छपा है।

हमारे समाज मे नई सभ्यता के जो नये भाव आये हैं उनकी छाप हमारे कहानी-साहित्य पर पडती जा रही है। हमारे कहानी-साहित्य का वर्णन-क्षेत्र बहुत व्यापक होता जा रहा है। वर्तमान कहानी-साहित्य में राजनीतिक और सामाजिक तथ्यो के उद्घाटन के साथ-साथ भाव-विश्लेषण और मनोवैज्ञानिकता बढती जा रही है। इस उन्नति को देखकर यह आशा की जा सकती है कि वह शीघ्र ही विश्व-साहित्य से टक्कर ले सकेगा।

समालोचना

हिन्दी समालोचना का सूत्र-पात्र हरिश्चद्र युग मे बद्रीनारायण चौधरी की आनंद कादम्बिनी से हुआ था, किन्तु उसका उल्लेखनीय विकास द्विवेदी युग मे हुआ। द्विवेदी जी ने सरस्वती मे प्रकाशित-समालोचनाओ के साथ कालिदास की निरकुशता, विक्रमांकदेव चरित चर्चा, नैषध चरित चर्चा आदि समालोचनात्मक छोटी पुस्तके भी निकाली। मिश्र बन्धुओ द्वारा लिखित 'हिन्दी नवरत्न' समालोचना के इतिहास मे दूसरा उल्लेखनीय कार्य हुआ। द्विवेदी जी तथा मिश्र-बन्धु दोनो शास्त्रीय आधारो के मानने वाले थे और वे कवियो को गुण-दोनो के आधार पर ऊंची-नीची श्रेणी में बैठालना चाहते थे। इस प्रकार की आलोचना को निर्णयात्मक आलोचना कहते है। मिश्र बंधुओ ने विहारी को देव से नीचा बताकर एक साहित्यिक विवाद खडा कर दिया और उसके फलस्वरूप पडित पद्मसिह शर्मा, लाला भगवानदीन और कृष्ण विहारी मिश्र ने तुलनात्मक ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार हिन्दी मे तुलनात्मक आलोचना का जन्म हुआ।

आचार्य शुक्लजी के समालोचना क्षेत्र मे प्रवेश करने से व्याख्यात्मक आलोचना का सूत्रपात हुआ। उन्होने कवियों के आदर्शों और विचारो को जनता के सामने उत्तम से उत्तम रूप मे उपस्थित किया। उन्होने जायसी तुलसी और सूर की भूमिका लिखकर उनके समझने मे लोगो की सहायता दी।

यद्यपि वे पाश्चात् आदर्शो से प्रभावित थे तथापि उन्होने अधिकाश मे भारतीय रस-पद्धति का अनुसरण किया। आजकल के अधिकाश आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शाँति प्रिय द्विवेदी, सत्येन्द्र जी, कृष्णशङ्कर शुक्ल आदि उनकी पद्धति का ही थोडे-बहुत अन्तर के साथ अनुसरण कर रहे हैं। सैद्धान्तिक आलोचना का सूत्रपात्र डाक्टर श्यामसुन्दरदास जी ने अपने साहित्यालोचन से किया था। उसमे काव्य के आदर्शो, सिद्धातो और अङ्गो का विवेचन हुआ है। ऐसी पुस्तको मे पडित रामदहिन मिश्र का काव्यालोक, लेखक का 'सिद्धात और अध्ययन' आदि कई पुस्तके निकल चुकी है। अज्ञेय जी डाक्टर नगेद्र जी आदि ने अन्य प्रवृत्तियो के साथ मनोवैज्ञानिक आलोचना की भी प्रवृत्ति है। डाक्टर रामविलास शर्मा शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त आदि लेखकगण मार्क्सवादी आलोचना पद्धति की ओर झुके हुए है। आजकल समालोचना साहित्य बहुत समृद्ध हो रहा है।

गद्य की अन्य विधाएँ

रेखा-चित्र

(२) रेखा-चित्र वास्तव मे शब्द चित्र होते हैं। ये व्यक्तियो के भी होते हैं और वस्तुओ के भी कुछ रेखा-चित्र कहानियो के निकट आ जाते है या यों कहिये कि कुछ कहानियाँ रेखा-चित्र के निकट आ जाते है। रेखा-चित्र का चलन हँस के रेखा-चित्राक से बढा। पंडित श्रीराम शर्मा बोलती-प्रतिमा प्रकाशचंद्रजी गुप्त के रेखा-चित्र, पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच), महादेवी वर्मा, ('अतीत के चलचित्र'),

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (भूले हुए चेहरे), देवेन्द्र सत्यार्थी (रेखाएँ बोल उठी) आदि महानुभावो ने सुन्दर रेखा-चित्र लिखे है। प० बनारसीदास चतुर्वेदी के लिखे हुए रेखा-चित्र निकल गये हैं किन्तु वे सस्मरण अधिक है।

(३) गद्य काव्य का शरीर गद्य होता है और उसकी आत्मा पद्य की। उसका शरीर भी साधारण गद्य से कुछ अधिक परिष्कृत होता है। हिन्दी मे गद्य-काव्य लेखको मे रायकृष्णदास, वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री प्रभृति लेखको ने अधिक प्रसिद्धि पाई है। वियोगी हरि की भाषा निर्भर वेग से प्रवाहित होती है। उसमे थोडा अक्खड़पन भी रहता है। रायकृष्णदास की भाषा का प्रवाह स्निग्ध और शांतिमय है। श्रीमती दिनेशनदिनी डालमिया के भी कई गद्य काव्य संग्रह निकल चुके है। उनमे 'मौक्तिक माल' और 'उनमन' मुख्य है।

गद्य काव्य

जीवनी-साहित्य

जीवनी इतिहास और उपन्यास के बीच की विधा होती है। उसमे इतिहास का सा सत्य की ओर आग्रह रहता है और उपन्यास का सा व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बल दिया जाता है। जीवनिया दो प्रकार की होती है एक दूसरे द्वारा लिखी हुई, जैसी कि पडित बनारसीदास चतुर्वेदी की लिखी हुई, सत्य नारायण जी की जीवनी और दूसरी आत्म कथा के रूप मे लिखी हुई। जैसी महात्मा गाँधी की अथवा डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की। सस्मरण भी जीवनी साहित्य मे आते है। इसमे जीवनी के विषय के साथ लेखको को भी महत्व मिलता है, किन्तु जीवनी की सी अविच्छिन्नता नही रहती है। हाल ही मे पडित बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित समरण निकले है।

जीवनी साहित्य का आरम्भ तो गोस्वामी गोकुलनाथजी लिखित वार्ताओ से ही हो गया था। वे ब्रजभाषा गद्य में थी। भारतेन्दु

काल मे स्वय भारतेदु जी ने छोटे-छोटे चरित्र लिखे उनके पश्चात् कार्तिक प्रसाद खत्री ने कुछ जीवन-चरित्र लिखे, जैसे मीराबाई का जीवन चरित्र। मुशी देवीप्रसाद मुंसिफ ने राजपूताने के कई ऐतिहासिक व्यक्तियो के जीवन चरित्र लिखे। फिर अनेको कवियो और देश-विदेश के राजनीतिक नेताओ के जीवन चरित निकले।

पडित सीताराम चतुर्वेदी लिखित 'महामना मालवीय की जीवनी' घनश्यामदास बिडला लिखित 'बापू' श्री मन्नारायण अग्रवाल द्वारा लिखित 'सेगाव का संत' आदि सुन्दर और कलामय जीवन चरित्र है।

आत्म-कथाओ मे श्रद्धानन्द लिखित 'कल्याण मार्ग का पथिक', डाक्टर श्यामसुन्दरदास जी की आत्म-कथा, वियोगी हरि जी का मेरा 'जीवन प्रवाह', भवानी दयाल सयासी की लिखी हुई 'प्रवासी की आत्म कथा' आदि बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। साहित्य का यह अङ्ग क्रमश पुष्ट होता जा रहा है।

आधुनिक युग

पद्य (व्रजभाषा काव्य)

परिस्थितियॉ

सन् १८५७ के विप्लव की विफलता के पश्चात् अँग्रेजों का शासन दृढ होता गया और उसी के साथ शासन मे कुछ कुछ व्यवस्था भी आई। अपेक्षाकृत शाति का वातावरण उपस्थित हुआ। किन्तु पढी-लिखी जनता के मन मे एक उथल-पुथल मची हुई थी। विप्लव के शमन से स्वतत्र्य की भावना दब भले ही गई हो मरी नही थी। सुव्यवस्था के साथ अँग्रेजी राज्य मे जो शोषण चल रहा था उससे लोग अचेत न थे। भारतेदु जैसे राजभक्त को भी कहना पड़ा था। "अँग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी। धन विदेस चलि जात यही अति ख्वारी" इधर शोषण के प्रति राजनीतिक जाग्रति हो रही थी, उधर सामाजिक और

धार्मिक जागृति की भेरी भी बजने लगी थी। भारतीय समाज का भी अपने दोषो की ओर ध्यान गया था।

यद्यपि पिछली प्रवृत्तियो का एक साथ अंत न हो सकता था क्योकि गद्य की अपेक्षा पद्य मे रूढिवाद कुछ दिनो अधिक चलता है फिर भी कविता का क्षेत्र इन नये प्रभावो से अछूती न रह सकी। रीतिकाल के अवरुद्ध वातावरण मे नये वातायन खुले। समाज-सेवा और देश-भक्ति के भाव भी कविता के विषय बने। यद्यपि उन दिनो खडी बोली का गद्य मे प्रचलन हो गया था तदापि पद्य की भाषा अधिकांश मे परम्परागत ब्रजभाषा ही रही। भारतेंदु हरिश्चन्द्र जी इस नई जागृति के वैतालिक थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द
(१९०७-१९४२)

भारतेन्दु बाबू का जन्म काशी के सम्पन्न-वैश्य परिवार मे हुआ था। इनकी अधिकाश शिक्षा घर ही पर हुई थी। इनको बंगला, गुजराती और उर्दू का भी अच्छा ज्ञान था। इन भाषाओ मे इन्होने कविता भी की थी। ये बडे प्रेमी स्वभाव और उदार प्रकृति के थे। आप वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित थे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है यद्यपि रीतिकाल का अन्त हो चुका था और भक्ति काल उससे बहुत पीछे रह गया था तथापि भक्ति और शृंगार विषयक कविताओ का अन्त नही हुआ। एक तो वैसे भी कोई प्रवृति आकर सहज मे नष्ट नही होती और भक्ति और फिर शृङ्गार मनुष्य की शाश्वत प्रवृत्तियो मे से है। इस प्रकार भारतेन्दुजी की कविता मे कृष्ण भक्ति, शृङ्गार (प्राय रीतिकाल का सा ही कृष्णाश्रित किन्तु लक्षण ग्रन्थ नही लिखे गये) और देशभक्ति की कविता की त्रिवेणी प्रवाहित हुई। आपके भक्त सर्वस्व, उतरार्द्ध, भक्तमाल, प्रेम-मालिका, कार्तिक-स्नान आदि भक्ति परक ग्रन्थ हैं। उनकी वैष्णवता समन्वयवादिनी थी। उन्होने जैन मत से अविरोध भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की। प्रेम तरग, प्रेम माधुरी आदि मे रीतिकालीन

प्रभाव है । भारतभिक्षा, भारत वीरत्व, रिपनाष्टक, राजकुमार सुस्वागत पत्र आदि मे राजभक्ति मिश्रित देशभक्ति प्रधान है । भारतेन्दुजी की देश-भक्ति राज-भक्ति मिश्रित थी । उसके दो कारण थे । अँग्रेजो से कुछ अधिकार पाने का वही मार्ग-सुगम था और दूसरी बात यह थी कि वास्तव मे शासन मे सुव्यवस्था और कावुल आदि की लडाई के बढे हुए कर-भार से दुखित होते हुए भी वे अँग्रेजो से कुछ आशा रखते थे ।

आपकी भक्ति सम्बन्धी एक कविता का उदाहरण लीजिए -

व्रज के लता पता मोहि कीजै
गोपी-पद-पकज पावन की रज जामै सिर भीजै ।
आवत जात कुज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह वर हरीचन्द को दीजै ॥

मूल प्रवृतियाँ

भारतेन्दुजी की कविता मे चार प्रवृत्तियाँ थी (१) भक्ति और शृङ्गार से साथ-साथ देश-भक्त की कविता (२) प्रेम मे वेदना और कसक जो उर्दू से प्रभावित थी (३) शाब्दिक चमत्कार प्रदर्शन (४) साहित्यिक भाषा का जनता के साथ सम्पर्क । उन्होने व्रजभाषा मे से उन शब्दो को जो कि चलन से वाहर थे, जैसे लोयन, दीह आदि का वहिष्कार कर दिया या । इनकी भाषा मे चलतापन भी अधिक था और कही-कही उस पर उर्दू का भी प्रभाव था । ये मूल प्रवृत्तियाँ भारतेदु की भी थी, किन्तु औरा मे प्रेम की कसक की अपेक्षा देशभक्ति और चमत्कार प्रदर्शन तथा सजीव हास्य-व्यग्य की प्रवृत्ति अधिक थी । इसलिये युग की प्रवृत्तियो मे हम देशभक्ति, समाज-सुधार, हास्य व्यग्य और व्रजभाषा का काव्य भाषा के रूप मे प्रयोग को ही मुख्य कहेगे ।

ब्रजभाषा के अन्य कवि

भारतेन्दु जी के समय मे और भी बहुत से ब्रजभाषा के कवि हुए है जिनमे अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, प्रताप नारायण मिश्र, बदीनारायण चौधरी प्रेमघन, ठाकुर जगमोहनसिंह, राय बहादुरलाल सीताराम आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु युग के बाद मे भी ब्रजभाषा मे कविता होती रही। इनके अतिरिक्त मिश्र बन्धुओ और आचार्य शुक्लजी ने भी ब्रजभाषा मे सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं। बाद के कवियो मे श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, (इन्होने खड़ी बोली में भी कविता की है। पंडित सत्यनारायण कविरत्न और श्री वियोगी हरि ने द्विवेदी युग मे भी ब्रजभाषा का साथ न छोड़ा और खड़ी बोली के आकर्षण क्षेत्र के बाहर रहे।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (सं० १६२३-१६८६)

आप ब्रजभाषा क्षेत्र के न रहने वाले होते हुए भी आपने ब्रजभाषा मे उच्चकोटि की कविता की है आपका भी जन्म वैश्य कुल मे हुआ था और आप महारानी अयोध्या के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। आपने हरिश्चन्द्र, गङ्गा लहरी, कलकाशी आदि कई ग्रन्थ लिखे है, किन्तु आपके गंगावतरण और उद्धव-शतक ने आपको विशेष ख्याति प्रदान की है। गंगावतरण मे आपने शृंगार, वीर, भयानक, हास्य सभी रसों का भाव समावेश किया है। उद्धव-शतक मे उद्धव-सवाद की प्राचीन परिपाटी का नवीनता के साथ प्रतिपालन किया गया है। उद्धव शतक मे भक्तिकाल की सगुणोपासना के साथ रीति-काल की अलंकारिता है। रत्नाकर जी की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है जिसमे चलते हुए मुहावरो जैसे हरा होना जुडाना बह जाना आदि के कारण एक विशेष लाक्षणिकता आ गई है। कही-कही मुहावरो का (जैसे धृतराष्ट्र के सम्बन्ध मे अन्धे के आगे रोने मे) विशेष सार्थकता के प्रयोग हुआ है। आपकी भाषा,

विशेषकर गगावतरण की अपेक्षाकृत ओजमयी-है। कही-कही अवाइ (अवाक), अकह (अकथ) आदि अपभ्रंश के भी प्रयोग आ गये है।

सत्यनारायण 'कविरत्न' (स० १९४२-१९७५)

आपने आगरे के ताजगज के निकट धाधूपुरा गाँव मे निवास कर आगरे को गौरवान्वित किया था। आप बडे सरल स्वभाव के थे और आपकी भाषा के सहज माधुर्य के कारण आपको लोग ब्रज कोकिल भी कहते थे। आपका प्रेम का आदर्श रसखान और भारतेन्दु जी के प्रेम के आदर्श से मिलता-जुलता था। आपको प्रकृति से भी बडा प्रेम था। आपकी नीचे की पक्तियो मे आपके हृदयोल्लास का परिचय मिलता है।

अलवेलि कहुँ वेलि द्रुमन सी लिपटि सुहाई।
धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई॥

आपके भ्रमरदूत मे यशोदा की ओर से भ्रमर को दूत बना कर भेजा गया है। यशोदा के सन्देश मे आपने राजनीतिक भाव भर दिये है

शेष न रह्यो सनेह को, काहू हिय मे लेस।
कासी कहिए गेह को, देसहि मे परदेश॥
भयो अब जानिए।

अन्तिम छोटी पंक्ति नन्ददास के भ्रमर गीत की याद दिलीती है। 'माधव आप सदा के कोरे' मे थोडा बहुत पुट राजनीतिक व्यंग है। आपका उत्तर रामचरित का अनुवाद प्राय उतना ही सफल हुआ है। जितना राजा लक्ष्मणसिह का शकुन्तला का अनुवाद।

श्री वियोगी हरि (जन्म संवत् १९५३)

श्री वियोगी हरि का बाल्यकाल छतरपुर (विन्ध्य प्रदेश) मे बीता है। आपके ऊपर वैष्णवता और देश-भक्ति की गहरी छाप है और आप हरिजन उद्धार मे अपना योग दे रहे हैं।

आपने समयानुकूल ब्रजभाषा मे वीर रस का काव्य लिखा है। आपकी वीर सतसई मगला प्रसाद पुरस्कार से सम्मानित हो चुकी है। आपने ब्रजभाषा के अच्छे पद भी लिखे है।

अन्य अधिकारी

मुक्तक काव्य के क्षेत्र मे दुलारेलाल भार्गव, पण्डित किशोरी दास वाजपेयी, नाथूराम माहौर आदि नाम उल्लेखनीय है। प्रबन्ध काव्य मे हरदयालु सिंह जी दैत्य वश ने पर्याप्त प्रसिद्धि पाई है। यद्यपि ब्रज-भाषा को खडी बोली ने दबा लिया है तथापि माधुर्य गुण के लिए ब्रज-भाषा काव्य को आज भी सराहना होती है।

खड़ी बोली पद्य

खडी बोली का आंदोलन

यद्यपि भारतेन्दु बाबू ने भी थोडी बहुत कविता खड़ी बोली मे भी की थी तथापि उसका समुचित विकास द्विवेदी युग मे ही हुआ। हरिश्चन्द्र युग मे खडी बोली गद्य की तो प्रतिष्ठा हो गई थी किन्तु पद्य मे ब्रज-भाषा का ही साम्राज्य बना हुआ था। लाघव (बचत) के उद्देश्य से द्विवेदी युग मे यह आदोलन उठा कि गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो। खडी बोली के आदोलन को अग्रसर करने वालों मे अयोध्या प्रसाद खत्री, (कार्य काल सन् १८८७) महावीर प्रसाद और श्रीधर पाठक प्रमुख थे। उनका यह कहना था कि यह हमारे लिए लज्जा का विषय है कि गद्य की भाषा और हो और पद्य की और।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्वत् (१९२१-१९९४)

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी खडी बोली के पक्षपाती और उन्नायक थे। वे कविता मे तुकबन्दी के विरोधी थे। उनका कहना था कि तुकबन्दी से कारण भावो को सकुचित करना पड़ता है। तथा शब्दो को भी तोड़ना मरोड़ना पड़ता है।

इसलिए वे संस्कृत छन्दो के पक्ष मे थे। उसका एक नमूना यहा दिया जाता है

सुरम्यरूपे रसरागिरजिते
विचित्र वर्णाभरणे कहाँ गई ?
अलौकिकानन्दविधायनी कहा,
कवीन्द्रकान्ते कविते ! अहो कहाँ ?

संस्कृत छन्दो मे तुक तो नही मिलती किंतु हरेक वर्ण का लघु (छोटा) और गुरु (बड़ा) का क्रम निश्चित रहता है। ऐसे छन्द वर्ण वृत्त कहलाते है। मात्रिक वृत्तो मे मात्राओ की गणना होती है। लघु के लिए एक और गुरु के लिए दो।

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी कवि की अपेक्षा युग-प्रवर्तक अधिक थे। वे कवियो को एक विशेष दिशा मे कविता करने का प्रोत्साहन दिया करते थे। इसके अतिरिक्त वह युग भी समाज-सेवा और देश-भक्ति का था। आर्य समाज का भी प्रसार हो रहा था। प० नाथूनाम शंकर शर्मा ने आर्य समाज के ही प्रभाव मे लिखा। कवियो ने कुछ द्विवेदी जी के प्रभाव से और कुछ युग की प्रवृत्तियो के कारण देश-भक्ति और समाज सुधार की कविताए लिखी।

पं० श्रीधर पाठक (१८७१-१८८५)

पहले ब्रजभाषा मे कविता करते थे। उसके पश्चात् उन्होने खडी बोली कविता का पक्ष लिया और स्वय भी खडी बोली की कविता के अच्छे उदाहरण उपस्थित किए इहोने गोल्ड स्मिथ की तीन कविता पुस्तको का Hermit का एकान्तवासी योगी नाम से Traveller का श्रातपथिक नाम से और Deserted Village की ऊजड़ गाँव के नाम से अनुवाद किये। ऊजड़ गाँव ब्रजभाषा मे है। इन्होने कविता मे कई प्रकार के प्रयोग किये, एकान्तवासी योगी सवत् १९४१ मे लावनी शैली मे निकला था। श्रातपथिक की रचना इन्होने रोला छंद से की [illegible]साध्य अटन

उन्होने अतुकान्त कविता का प्रयोग किया। (ऊजड गाँव ब्रजभाषा मे है) पाठक जी ने और स्वतन्त्र कविताएँ लिखी जिनमे उनकी देशभक्ति और प्रकृति प्रेम का परिचय मिलता है। पाठक जी के राष्ट्रीय गीत भारत गीत मे संग्रहीत है। इनकी कविता का एक उदाहरण 'जगत सचाई सार' से दिया है।

ध्यान लगा के जो देखो तुम सृष्टि की सुघराई, को,
बात बात मे पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को।
ये सब भाति-भाति के पक्षी ये सब रंग रग के फूल,
ये वन की लहलही लता नवलित-ललित शोभाकी मूल॥
ये नदिया ये झील सरोवर कमलो पर भौरो की गूँज।
वडे सुरीले बोलो से अनमोल घनी वृक्षो की पुज॥

शुक्लजी ने पाठकजी को सच्चे स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तक माना है।

पडित अयोध्यासिह उपाध्याय ने ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो मे कविता की है। ब्रजभाषा की कविता मे आप रीतिकाल के कवि रूप मे आते है। 'रस कलश' पुराने ढग का रीति ग्रन्थ ही है इसके कुछ नवीन प्रकार की नायिकाओ की अवश्य परिकल्पना की गई है।

अयोध्यासिह उपाध्याय
'हरिऔध'
(१६२२-२००४)

खडी बोली के ग्रन्थो मे आपके 'प्रिय प्रवास' ने सबसे अधिक ख्याति पाई है। वह सस्कृत छन्दो मे लिखा गया है। उसमे कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रजवासियो के हृदयोद्गार है और स्मृति रूप से कृष्णचरित का भी वर्णन किया गया है। प्रिय प्रवास के कृष्ण प्राचीन काव्य की परम्परा के कृष्ण नही है। इसमे भगवान कृष्ण को एक कर्त्तव्य-परायण जातीय उन्नायक के रूप से दिखाया गया है राधिका जी भी परम कर्त्तव्य परायण समाज सेविका रमणी है। ऊधो जिस उपदेश को उन्हे देने आये थे उसमे वे स्वय ही शिक्षित हो चुकी थी

पाई जाती विविध वस्तुयें हैं सबों में।
जो प्यारे को, अमित रङ्ग और रूप मे देखती हूँ।
न उन सबको प्यार जी से करूँगी।
यों है मेरे हृदय तल मे विश्व का प्रेम जागा॥

इस ग्रन्थ मे वात्सल्य और शृंगार के वियोग पक्ष की बडी करुणा-पूर्ण झांकी है। मेघदूत की भांति इसमें पवन दूत दूत की भी कल्पना की गई है। जिसमे राधा का विरह बड़े सात्विक रूप मे प्रदर्शित किया गया है।

प्रिय प्रवास पर बुद्धिवाद का पूरा प्रभाव है। गोवर्धन पर्वत के उठाने की बाद को अक्षरश. सत्य न नाम कर उसको अलङ्कारिक रूप दिया गया है। इसमे प्रकृति चित्रण भी हुआ है किन्तु उसमें नाम परिगणन और उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति अधिक है। उपाध्याय जी की दूसरी महत्व की पुस्तक है 'वैदेही वनवास'। इस पर भी वर्तमान युग का प्रभाव है। इसमे सीताजी को धोके से वनवास नही दिया जाता वरन् उनकी पूर्ण स्वीकृति के साथ उनके बन मे पहुँचाया जाता है। किन्तु इसमे वह काव्य सौष्ठव नही जो प्रियप्रवास मे है।

यद्यपि उपाध्याय ने चुभते चौपदे आदि मे बोलचाल की भाषा को अपनाया है तथापि अधिकाश मे विशेषकर प्रिय प्रवास मे उनकी भाषा सस्कृत गर्भित है। सस्कृत छन्दो का निर्वाह सस्कृत पदावली मे ही सुगमता से हो सकता है। उपाध्यायजी ने भाववाचक क्रियायें बहुत बनाई है और शब्दो की पुनरावृत्ति भी बहुत है। किंतु यह पहला ग्रन्थ है जिसने खडी बोली मे महाकाव्य लिखे जाने की क्षमता सिद्ध की थी। यशोदा की वात्सल्यमयी चिन्ता का बडा मार्मिक चित्रण हुआ है।

प्रिय सुअन हमारा क्यो नही गेह आया।
वर नगर छटाये देख के क्या लुभाया॥

वह कुटिल जनों के जाल मे जा पडा।
प्रियतम! उसको राज्य का भोग भाया॥

× × × ×

पल-पल जिसके पंथ को देखती थी।
निशदिन जिसके ध्यान मे ही बिताती॥
उर पर जिसके सोहती मंजु माला।
वह नवनलिनी से नेत्र वाला कहाँ है॥

मैथिलीशरण गुप्त (जन्म संवत् १९४३)

गुप्तजी वर्तमान युग के प्रतिनिधि कवि है। इन्होने मुक्तक काव्य और प्रबंध काव्य दोनो के लिखने मे विशेषता प्राप्त की है और उनकी धार्मिक उदारता ने उनके द्वारा सब धर्मों और सम्प्रदायों से सम्बन्धित छोटे-छोटे काव्य ग्रन्थ। अनघ का बुद्ध धर्म से सम्बन्ध है काबा और कर्बला का मुस्लिम सस्कृति से। गुरुकुल मे सिख गुरुओ का वर्णन है। गुप्तजी पर गॉधीवाद का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओ मे जैसे भारत-भारती पर द्विवेदी-युग की उपदेशात्मकता की पूरी पूरी छाप है। उनके खण्ड काव्यो मे जयद्रथ बध, अनघ ने बडी प्रसिद्ध पाई है। गुप्तजी की प्रतिभा का पूर्ण विकास हमको उनकी साकेत और यशोधरा नाम की रचनाओ मे मिलता है। साकेत मे रामकथा के सहारे लक्ष्मण और साहित्य की उपेक्षिता उर्मिला को महत्ता दी गई है। इस प्रकार नवीन युग मे बुद्धिवाद का प्रभाव है। इसमे उर्मिला-लक्ष्मण और सीता-राम के पारिवारिक जीवन की सुन्दर झाँकी दी गई है। रामचन्द्र के अवतार का उद्देश्य बडे मार्मिक और प्रभावशाली शब्दो मे कहलाया गया है

मै आर्यों का आदर्श बताने आया।
जन-सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया॥

× × × ×

सदेश यहाँ मे नही स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

साकेत मे गाँधीवादी सरल जीवन की पुकार है 'मेरी कुटिया मे राज भवन मन भाया' गुप्तजी ने तुलसी की भाँति अपनी अनन्यता रखते हुए कृष्ण चरित का वर्णन द्वापर मे किया, कृष्ण चरित के अनुकूल ही इसको मुक्तक के रूप मे लिखा।

'यशोधरा' मे नारी जीवन की महत्ता दिखाई गई है। नारी की करुण दशा को नीचे के शब्दो मे अङ्कित किया है।

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखो मे पानी॥

यशोधरा के आँचल मे कुमार राहुल के लिए आँचल का दूध है और बुद्ध के लिए आँखो का पानी किंतु वह दीन नही हुई। उसको बुद्ध के चले जाने का नही वरन् इस बात का दुख है कि नारी को इस योग्य नही समझा कि बुद्धदेव उसकी सलाह लेकर जाते।

सखि वे मुझ से कह कर जाते,
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते!

विशेषतायें :

अनन्य और अटल राम-भक्ति के साथ पूर्ण मात्रा मे परधर्म सहिष्णुता। समन्वय भावना।

(२) अचल देशभक्ति और अतीत के प्रति गौरव-भावना।

(३) मानव गौरव और आशावाद।

(४) पारिवारिक जीवन की सुन्दर सरस झाकियाँ।

(५) वाक्‌चातुर्यमय सवाद।

(६) गुप्तजी की भाषा सस्कृत गर्भित खडी बोली है। किंतु उसकी सस्कृत पदावली ने उसके प्रसाद गुण मे बाधा नही डाली गुप्तजी ने कही-कही व्रजभाषा के शब्दो का भी प्रयोग किया है। वह

सर्व बोध गम्य होते हुए उर्दू की ओर नही झुकी है। 'साकेत' मे तुक के निर्वाह के लिए कही-कही शिथिल या अनावश्यक शब्दो का प्रयोग हुआ है। साकेत मे प्राचीन ढङ्ग के प्रतीप तद्गुण आदि प्राचीन अलङ्कारों का भी सफलता पूर्वक प्रयोग किया गया है। मैथलीशरण जी ने हिन्दी छन्दो को प्रतिष्ठा दी है।

अन्य राष्ट्रीय कवि

द्विवेदी युग मे राष्ट्रीय आदोलन खूब जोरो से जलते रहे। बंग-भग से राष्ट्रीय आन्दोलनो मे तीव्र गति आगई थी, फिर महात्मा गाधी का भी भार राजनीति पर प्रभाव पडने लगा। भिक्षा के स्थान मे आत्मबल और सत्याग्रह को स्थान मिल गया था। इसकी झकार हमको साकेत मे सुमित्रा के वचनो मे मिलती है 'स्वत्वो की भिक्षा कैसी। आजकल की राष्ट्रीयता भूषण की राष्ट्रीयता से कुछ भिन्न है। भूषण के समय मे हिन्दुत्व की राष्ट्रीयता थी क्योकि उनके समय मे औरगजेब हिन्दुओ पर अत्याचार कर रहा था। आजकल की राष्ट्रीयता मे हिन्दू मुसलिम ईसाई सब देश और राष्ट्र के अंग माने गये है। आज की राष्ट्रीयता मे सशस्त्र क्राति नही है वरन् हृदय परिवर्तन के लिए स्वय कष्ट सहकर सत्याग्रह करना बतलाया गया है। द्विवेदी युग मे और उसके बाद भी रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल, चतुर्वेदी बालकृष्ण शर्मा नवीन, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही। (त्रशूल)। सियारामशरण आदि राष्ट्रीय काव्य धारा प्रवाहित करते रहे।

माखनलाल चतुर्वेदी (जन्म स० १९४५)

इनकी राष्ट्रीय कविता मे भारतीय आत्मा बोल उठी है। इनकी राष्ट्रीयता शुष्क नही वरन् बडी सरस है। करुणा ने उनकी कविता को और भी कोमलता प्रदान की है। हिमकिरीटिनी और हिमतरंगिनी इनके दो काव्य सग्रह है। इनकी पुष्प की अभिलाषा शीर्षक कविता ने बहुत प्रसिद्ध पाई है।

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
× × × ×

मुझे तोड़ लेना बन माली।
उस पथ में देना तुम फेंक॥
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक॥

रामनरेश त्रिपाठी (जन्म सं० १९४६) ने 'पथिक', मिलन और स्वप्न में छोटी-छोटी काल्पनिक कथाओं के आधार पर स्वदेश प्रेम की भावना को पुष्ट किया है। इनके काव्य में सुन्दर प्रकृति चित्रण भी हुआ है। पथिक में दक्षिण भारत के दृश्यों का समावेश है तो स्वप्न में, काश्मीर और हिमालय का। देश की प्रकृति से प्रेम भी देश भक्ति का एक अंग है। इनकी भाषा तत्सम प्रधान है किन्तु प्रवाहमय है।

सियारामशरण गुप्त (जन्म संवत् १९५२) मैथिलीशरण गुप्त के अनुज भी गाँधीवाद से प्रभावित हैं। इन्होंने साकेत का सा महाकाव्य तो नहीं लिखा किंतु मौर्य विजय आदि खण्ड काव्य लिखे हैं। उनकी स्फुट कविताओं का संग्रह विशाद और पाथेय में है। विशाद भावात्मक कविताएँ और पाथेय में विचारात्मक हैं। उन्मुक्त में उन्होंने एक काल्पनिक कथा के सहारे युद्ध का विरोध किया है और गाँधीवादी स्वर में कहा है 'हिंसानल से शाँत नहीं होता हिंसानल'। हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।' नोआखाली में दिखाया गया है कि मुसलमानों में भी लोग अहिंसावादी हैं।

ठाकुर गोपालशरणसिंह (जन्म सं० १९४८) कई कविता संग्रह माधवी, कादम्बिनी, सुमना आदि निकल चुके हैं। इन्होंने खड़ी बोली में भी कवित्त लिखे हैं। कुछ अन्योक्तियाँ भी लिखी हैं। सुमना में गाँधीवादी प्रभाव है 'तुम घृणा करो मैं प्यार करूँ।'

बालकृष्ण शर्मा नवीन (जन्म सं० १९६१)

ये राष्ट्रीय क्षेत्र मे प्रमुख कार्यकर्ता रहे है। इनकी कविता मे कुछ उग्रता दिखाई देती है। कवि से ऐसी उथल-पुथल मचाने वाली कविता चाहते है जिसमे बरसे आग जलद जल जाएँ, भस्मसात भूधर हो जायँ' इन भस्मसात करने वाली कविताओ के साथ उन्होने कुछ प्रेम की कविताएँ भी लिखी है।

देशभक्ति के अन्तर्गत प्राचीन योद्धाओ और वीर पुरुषो का यशगान हुआ है। लाला भगवानदीन ने वीर 'पचरत्न' लिखा था। इन वीर चरितो लेखको मे श्यामनारायण पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है। उनकी हल्दी घाटी ने पर्याप्त प्रसिद्ध पाई है। उसकी भाषा मे बडा सुन्दर प्रभाव है और उसमे तलवार और घोडे के गतिमय चित्र है। देशभक्ति के ही अन्तर्गत हिन्दू मुसलिम ऐक्य और अछूतोद्धार का भी समर्थन हुआ है। श्री गुरुभक्ति सिह ने नूरजहाँ के ऊपर प्रबन्ध काव्य लिखा है। उसमे मुहावरो की अच्छी छटा दिखाई गई है।

द्विवेदी युग मे और भी बहुत से कवि हुए हैं जिनमे सर्वश्री बद्रीनाथ भट्ट, मुकुटधर पाडे, रूपनारायन पाडे, लोचनप्रसाद पाडे, प० रामचरित उपाध्याय आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस समय की देशभक्ति-पूर्ण-कविताओ का मूल स्वर यही रहा है।

नही स्वर्ग की चाह मुझे है नही नरक की भीति।
बढती रहे सदा मेरी बस जन्म भूमि से प्रीति॥

द्विवेदी युग की विशेषताएँ

(१) खडी बोली का प्राधान्य।

(२) इतिवृत्तात्मकता जिसके आश्रय मे वर्णन प्रधान और आख्यान प्रधान कविता को मुख्यता मिली। इसी कारण कल्पना और कला का अपेक्षाकृत अभाव रहा।

(३) उपदेशात्मकता राजनीतिक उत्थान के लिये चरित्र पर बल देने वाली कविता आवश्यक थी। इसी नैतिकता के कारण शृङ्गार का अपेक्षाकृत प्रभाव रहा है।

(४) समाज सुधार और देशभक्ति। राजनीतिक वातावरण मे हरिश्चन्द्र युग की अपेक्षा कुछ दृढता आ गई थी। भिक्षा और खुशामद की अपेक्षा कवियो मे आत्मबल आ गया था।

(५) बुद्धिवाद का प्रधान्य रहा। राम और कृष्ण भक्ति काव्य मे भी प० अयोध्यासिह और श्री मैथलीशरण जी गुप्त द्वारा बुद्धिवाद का प्रयोग हुआ है।

नवीनतम काव्य-धारा

(छायावाद युग)

परिस्थितियां

द्विवेदी युग मे यद्यपि बुद्धिवाद का प्रधान्य हो गया था फिर भी वह श्रद्धा का युग था। राजनैतिक आदोलनो मे पूर्ण बलिदान करने पर भी जब सन् १९२१ के से अहिसात्मक आन्दोलनों के फलस्वरूप भी पराजय का सामना करना पड़ा तब स्वाभावतः श्रद्धा का हिरास और निराशावाद का जन्म हुआ। राजनीतिक विषमताओ के कारण लोगो का ध्यान मानवता की ओर आकर्षित हुआ। ऊँच-नीच का भेद मिटने लगा। मनुष्य का मनुष्य के नाते मान देने की पुकार हुई। राजनीतिक क्षेत्र असफलताओ और वैयक्तिक प्रेम की प्रतिस्पन्दन ने शून्य कवियों को अन्तमुंखी बना दिया जो सुख और आनन्द जीवन मे नही मिलता था उसे भी कल्पना मे ढूंढने लगे। द्विवेदी युग की इति-वृत्तात्मकता और शृङ्गार बहिष्कार की प्रतिक्रिया हुई इतिवृत्तात्मकता और आख्यानात्मक काव्य के स्थान मे भावात्मक काव्य की ओर झुकाव हुआ। प्रकृति प्रेम मे सौदर्य उपासना को आश्रय मिला। शृङ्गार का भी परिष्कार हुआ नारी के

भोग्या मानने की रीति-कालीन प्रवृत्ति के स्थान मे नारी के प्रति आदर की भावना जागरित हुई। सतगुण उपासना के स्थान मे वेदान्त के सर्वेश्वरवाद के आधार पर निर्गुण के प्रति एक रहस्य भावना को प्रोत्साहन मिला।

अग्रेजी काव्य के स्वच्छदतावादी (रोमाटिक) कवियो-शैली, कीट्स आदि के सम्पर्क तथा जन साधारण मे फैली हुई स्वातत्र्य भावना के कारण कविता मे भी व्यक्तिवाद और मुक्तक काव्य की ओर झुकाव बढा और कविता को छद और तुक के बधनो से मुक्त करने के नये प्रयोग होने लगे। अग्रेजी से कुछ नई अभिव्यंजना शैलियाँ भी आई। इन्ही सब परिस्थितियो मे छायावाद का जन्म हुआ। संक्षेप मे छायावाद युग की मूल प्रवृतियाँ इस प्रकार है।

१ *मानव गौरव* जिस मानव को पिछले युगो में ईश्वर, धर्म और राजसत्ता ने दबा रखा था, उसकी नए युग मे प्रतिष्ठा हुई, समाज मे शोषित पीडित और उपेक्षित भिखारी, विधवा, अछूत कविता के आलम्बन बने। ससीम को असीम से भी अधिक महत्ता दी गई।

विश्व मे वह कौन सीमा हीन है ?
हो न जिसका खोज सीमा मे मिला॥ (महादेवी)

२ *व्यक्तिवाद* व्यक्तिवाद और भावुकता-मानवता के नाते ही व्यक्ति को मान मिला। व्यक्ति के मान के साथ ही मुक्तक काव्य का चलन बढा। महाकाव्य मे काव्य के विषय को कवि की अपेक्षा अधिक मान मिलता है। तुलसी ने राम के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व खो दिया था। मुक्तक काव्य के ही साथ वैयक्तिक भावनाओ को स्थान मिला और कविता अधिक भाव प्रधान हो गई।

३. देश भक्ति की धारा जो भारतेन्दु युग से आती थी उसको एक नया बल मिला। आत्मबल के साथ सत्याग्रह की भावना जाग्रत हुई।

स्वदेश प्रेम

४ प्रकृति प्रेम तो स्वदेश प्रेम के साथ ही श्रीधर पाठक आदि की कविताओं द्वारा द्विवेदी युग मे ही कविता का विषय बन चुका था, किंतु छायावाद युग मे प्रकृति मे मानवी भावों का आरोप होने लगा। 'जुही की कली' ने नायिका का रूप धारण कर लिया। रजनी तारो की गजरे बेचने वाली बन गई यह छायावाद की एक विशेषताओ मे से है।

प्रकृति के प्रति नया दृष्टिकोण

५ राजनीतिक और वैयक्तिक विफलताओ और बेकारी के फलस्वरूप दुखवाद बढा।

दुःखवाद

६ दुख से त्राण पाने के लिए प्रकृति प्रेम के अतिरिक्त दूसरा साधन था-निर्गुण रहस्यमय प्रेम।

आध्यात्मवाद

७ (क) भाषा की लाक्षणिकता (जैसे अभिलाषाओ की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना) का अधिक उपयोग। (ख) कविता को छद के बधन से मुक्त करना अतुकान्त कविता करना, छदो का मिश्रण करना, छदो का बन्धन उडा कर केवल ताल लय का आश्रय लेना आदि प्रयोग इसी के अन्तर्गत हुए। (ग) नये अलङ्कार मूर्त की अमूर्त से तुलना 'बिखरी अलकें ज्यो तर्क जाल', इच्छाओं-सी' आसमान अमूर्त को मूर्त से उपमा जैसे जीवन की जटिल समस्या बढी जटा सी कैसी।" विशेषण विपर्यय (Transfered Apithet) अग्रेजी से आया। बच्चो का तुतलामय' तुतला नही

शैली के नये प्रयोग

होता है इससे अभिप्राय है तोतली भाषा बोलने वाले बच्चों का भय। गीले गान गान गीले नहीं होते वरन् गाने वाले के अश्रु भरे नेत्र गीले होते है। नेत्रो से हटाकर गीला विशेषण गान में लगा दिया गया है।
(घ) प्रतीकवाद जैसे चाँदनी अंधेरी, सुखदुख के प्रतीक हैं।

छायावाद और रहस्यवाद

नोट यह छायावाद युग की व्यापक प्रवृत्तियाँ है। किंतु इस युग मे दूसरी प्रवृत्तियाँ भी रही है। प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये है।

नवीन कविता की अस्पष्टता के कारण वर्तमान युग की कविता की हँसी उडाने के लिए लोग उसे छायावाद कहने लगे थे किंतु छायावादी कवियो ने इस नाम को स्वीकार कर लिया और उसमें विशेष सार्थकता भर दी। छायावाद अब उस कविता को कहते हैं जिसमे इतिवृत्तात्मकता की कटी-छटी सीमाओ से ऊपर उठकर साधारण प्राकृतिक वस्तुओ में मानवी भावो की मोती की आब जिसे सस्कृत मे छाया कहते हैं की झलक देखी जाती है। उसमें एक अपनी शैली होती है जिसमे लाक्षणिकता और प्रतीकवाद को स्थान होता है और छन्द की स्वतन्त्रता के साफ़ नये अलकारो का प्रयोग होता है। छायावाद मे स्थूलता से उठकर भाव की सूक्ष्मता की ओर उडान होती है।

रहस्यवाद की कविता वह कहलाती है जिसमे मनुष्य इस ससार में व्याप्त परम सत्ता के साथ भावात्मक वैयक्तिक सम्बन्ध का अनुभव या उसकी कल्पना करता है। अनश्वर और अव्यक्त के साथ प्रेम मे एक रहस्य की भावना आ जाती है। उस प्रेम का आनन्द गूगे के गुड की भाँति अनिर्वचनीय होता है। प्राचीन और नवीन रहस्यवाद मे यही अन्तर है कि प्राचीन रहस्यवाद अनुभावात्मक और साधनात्मक

होता था और नवीन रहस्यवाद कल्पनात्मक अधिक होता है और उसमे साधना का भी अभाव रहता है।

प्रसाद जी काशी मे रहते थे और उनकी अधिकांश शिक्षा घर ही पर हुई थी। उन्होने पारस्परिक जीवन व्यतीत करते हुए भी बडी उच्चकोटि की साहित्य सेवा की थी। आपको भारत के प्राचीन इतिहास से बहुत रुचि रही है और उन्होने अपने ज्ञान का उपयोग नाटक में किया। आपने मुक्तक और प्रबन्ध काव्य दोनो ही लिखे है। आपके मुक्तक काव्य के तीन संग्रह निकले है आँसू, झरना, और लहर। आपकी ब्रजभाषा की कविताएँ "कानन कुसुम" में संग्रहीत हैं। आपने अपने 'प्रेम पथिक' मे अतुकान्त कविता का प्रथम प्रयोग किया है। आँसू को प्रसादजी के घनीभूत पीडा कहा है, घनीभूत के श्लेष के सहारे पीडा की तीव्रता और घन अर्थात् बादल का सा फैलाव दोनो को ही व्यंजित किया है। आँसू के आलम्बन के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद है। कोई उसे लौकिक और कोई अलौकिक मानता ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रारम्भ मे कोई व्यक्ति ही था किन्तु वही समय पाकर दिव्य और अलौकिक बन गया। आँसू का आरम्भ अर्न्तज्वाला से होता है और उसका अन्त शातमयी प्रभात हिमकण की वर्षा मे होता है।

जयशंकर "प्रसाद" (१९४६ १९९४)

'कामायनी' प्रसादजी की अमर कृति है वह महाकाव्य के रूप मे लिखी गई है। इसमे देवताओ की अबाधित विलासमयी सभ्यता की विफलता दिखाई गई है। जल प्लावन द्वारा देव सृष्टि का नाश हो जाता है, केवल मनु बच रहते है। कामायनी की श्रद्धा 'काम' की पुत्री है। उसका मनु से विवाह हुआ था इसमे कथा के साथ रूपक भी चलता है।

कामायनी

मनु मन या मनुष्य के प्रतीक हैं; श्रद्धा हृदय की और इडा बुद्धि की। इडा या बुद्धि के दुरुपयोग से मनु को दुख उठाना पडता है किन्तु अन्त में श्रद्धा सहायता से मनु को कैलाश पर शिव के दर्शन होते है। ज्ञान, इच्छा और क्रिया के समन्वय को ही प्रसादजी ने शिव या कल्याण कहा है। इसमे भारतीय सस्कृति के समन्वयवाद और आनन्दवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई हैं। इस ग्रन्थ मे छायावादी कला की अच्छी झाँकी मिलती है। प्रसादजी की भाषा सस्कृति गर्भित हैं किन्तु सस्कृत पदावली के कारण उसका माधुर्य बढ़ा ही है। नए ढग के अलंकार विशेषण विपर्यय आदि का प्रयोग हुआ है, उपमाओ मे भी नवीनता है। "अलके बिखरी ज्यो तर्क जाल" मे मूर्त की अमूर्त से तुलना का अच्छा उदाहरण मिलता है। कामायनी मे प्रकृति चित्रण भी बहुत सुन्दर हुआ है। हमको उसमें प्रकृति के सौम्य और उग्र दोनो ही रूप देखने को मिलते हैं।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (जन्म सं० १९५५)

'निराला' जी का जन्म बगाल मे महिषादल के छोटे से राज्य मे हुआ था। आपका बंगाली भाषा पर अच्छा अधिकार है। आपका सस्कृत और अँग्रेजी अँग्रेजी कविता का भी अच्छा अध्ययन है। दर्शन शास्त्र की ओर आपको अधिक रुचि रही है और आपकी कविता मे भी इसी कारण दार्शनिक पुट आ जाता है। आपने अतुकान्त कविता का तो करीब-करीब प्रसाद जी के साथ ही साथ सूत्रपात किया था। आपने मुक्तक काव्य लिखने में विशेषता प्राप्त की है। 'जुही की कली' इस दिशा मे आपका प्रसिद्ध प्रयत्न है। देखिये .

विजन-बन-वल्लरी पर,
सोती थी सुहाग भरी।
स्नेह स्वप्न-मग्न अमल-कोमल तनु तरुणी,
जुही की कली।

दृग बन्द किए, शिथिल पत्राङ्क मे !

आपके कविता और गीत संग्रह परिमल, गीतिका, अनामिका, अणिमा, वेला नाम से निकले आपने तुलसीदास नाम का एक छोटासा खण्ड काव्य भी लिखा है। आपने छोटे-छोटे आख्यानो के सहारे, जैसे पचवटी प्रसंग मे, अपने दार्शनिक चिन्तन का परिचय दिया है। आप वेदान्त के ब्रह्मवाद से प्रभावित होते हुए भी भक्ति का द्वैतवाद चाहते हैं- आनद बन जाना श्रेय है आनन्द पाना प्रेय है।' तुम और मैं' मे भी वैसा ही दार्शनिक चितन है

तुम तुङ्ग हिमालय शृंग और मै चंचल गति सुर सरिता।
तुम विमल-हृदय उच्छ्वास और मैं कातकामिनी कविता॥

'भिक्षुक' और 'विधवा' आदि कविताओ मे भारत के करुण कलित जीवन की झाँकी है। 'कुकुरमत्ता' और 'वह तोड़ती पत्थर' आदि कविताएँ प्रगतिवाद से प्रभावित है। कुकरमत्ता सर्वहारा का प्रतीक है। 'जागो फिर एक बार' मे राजनीति उद्‌बोधन है। 'सरोज स्मृति' शोक गीत हैं। 'यमुना के प्रति' मे 'अधरो की आकुल तान' की झँकार सुनाई पड़ती है नट नागर और वशीवट की स्मृति हरी हो जाती है। 'राम की शक्ति पूजा' में वैष्णव और शक्ति सम्प्रदायो की समन्वय भावना है। 'सूखी री डार बसन बासंती लेगी' मे आशावाद का स्वर है। निराला जी की और भी बहुत सी कविताएँ प्रतीकात्मक है। 'सन्ध्या सुन्दरी' मे छायावादी मानवीकरण है।

निराला जी की भाषा संस्कृत-गर्भित है। उसमे ओज की मात्रा विशेषकर, राम की शक्ति पूजा', 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार, आदि कविताओ मे अधिक है। निराला जी की कविता मे नए प्रकार के अलंकारो की अच्छी छटा रहती है। आपकी उपमाएँ बड़ी अनूठी होती है। 'इष्ट देव के मँदिर की पूजा सी' में एक साथ शांत

और पवित्रता का चित्र उपस्थित हो जाता है। आपकी भाषा में प्रतीकों का भी व्यवहार कुछ प्रचुरता के साथ हुआ है।

सुमित्रानन्दन पन्त
जन्म (सं० १९५७)

पंतजी अलमोडा के पर्वत-प्रदेश के रहने वाले है उनके ऊपर वहाँ के प्राकृतिक सौदर्य का प्रचुर प्रभाव है जो उनकी कविता मे स्थान-स्थान पर झलक उठता है। पन्तजी की कविता मे छायावाद की सौदर्य-भावना पूरी तौर से उतर आई है।

आपकी कविता संग्रह वीणा, पल्लव, गुञ्जन, युगान्त, युग वाणी, ग्राम्या, स्वर्णधूलि और स्वर्ण-किरण, उत्तरा नाम से निकले है। ग्रन्थि एक छोटा-सा दुखान्त प्रेम-प्रधान खण्ड काव्य है।

पंतजी अधिकांश मे सौन्दर्य के कवि हैं। वे साम्यवाद से प्रभावित अवश्य हैं (उनकी ग्राम्या साम्यवाद से प्रभावित है किन्तु उसमे भी उनकी सौंदर्य भावना छिप नही सकी है। किन्तु वास्तव मे वे साम्यवाद और गाँधीवाद दोनो का समन्वय चाहते हैं।

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद।
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अतिवाद॥

पन्तजी की कविता मे भावुकता और बौद्धिक चिन्तन का सुखद सम्मिश्रण है। उनकी कविता मे न कोरी भावुकता का खोखलापन है और न बौद्धिक विचारो की शुष्कता। जीवन के सुख दुख का वे सन्तुलन चाहते हैं।

जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से
मानव जीवन मे बँट जावे
दुख सुख से औ सुख दुख से।

वे सुख दुख के मिलन मे ही जीवन की परिपूर्णता देखते है 'दुख-सुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन फिर घन मे

ओझल हो शशि फिर शशि ओझल हो घन' शशि सुख का प्रतीक है और घन दुख का।

पन्तजी पर भारतीय संस्कृति और दर्शन का पूरा प्रभाव है आपकी 'परिवर्तन' शीर्षक कविता भारतीय सर्वेश्वरवाद से प्रभावित है आपके नये काव्य-सँग्रहों मे भारतीय संस्कृति की छाप है। वे अरविन्द दर्शन से बहुत प्रभावित है। 'उत्तरा' शीर्षक कविता सग्रह मे साम्यवाद सामाजिक वर्तनी दृष्टि और भारतीय आध्यात्मवाद की उर्धगामिनी दृष्टि का समन्वय करने की अपील की है। पन्तजी की भाषा तत्सम प्रधान होते हुए भी बडी सरस और सङ्गीतमय है। आपके काव्य मे साहित्य और सङ्गीत का सुन्दर समन्वय मिलता है। निरालाजी की भापा मे जहाँ ओज प्राधान्य है वहाँ पन्तजी की भाषा मे माधुर्य का प्राचुर्य परिवर्तन मे ओज की भी झलक मिलती है। पन्तजी की कविता मे मालोपमाओ की छटा, जैसी छाया, बीचि विलास और नक्षत्र नाम की कविताओ मे है, दर्शनीय है,। 'मूर्त पदार्थो के अमूर्त उपमान भी बडे सार्थक और सुन्दर है। बादलों के प्रसङ्ग मे वे लिखते हैं "धीरे-धीरे संशय से उठ बढ अपयश से शीघ्र अछोर"। कोमलता लाने के लिये पन्तजी ने ब्रज भाषा शब्दावली का भी प्रयोग किया है। 'धूम-धुँआरे काजर कारे, हम ही बिकरारे बादर', आपकी भाषा मे ध्वनात्मक शब्दो का भी बाहुल्य रहता है। 'है चहक रही चिडियाँ टी-वी-टी टुट-टुट' सर सर मर मर रेशम के-से स्वर भर' शत फेनोच्छवसित स्फीत फूत्कार भयङ्कर।'

आपका जन्म फरुँखाबाद के एक सुविख्यात कायस्थ परिवार मे हुआ था। आपके पिताजी एडवोकेट थे, महादेवी वर्मा ने एम० ए० सस्कृत मे किया था। आपका जीवन अब प्रयाग महिला विद्यापीठ की देखभाल और समाज सेवा में व्यतीत होता है।

महादेवी वर्मा
(जन्म सं० १९६४)

चित्रकारी और कविता मे आपका बाल्यकाल से ही रुचि रही है। महादेवी वर्मा का आजकल की कवियत्रियो में बहुत ऊँचा स्थान है। दुख की आप उपासिका हैं। छायावाद का दुखवाद आप में पूर्णतया मुखरित हुआ है। आपने ही नीरभरी बदरी कहने मे वे सुख मानती है 'जो उमडी कल थी मिट आज चली' आप पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव है। आपके कविता और गीत संग्रहो के नाम इस प्रकार है नीहार, रश्मि, नीरजा, साध्यगीत और दीपशिखा।' महादेवी वर्मा चिन्तन प्रधान लेखिका है। बौद्ध धर्म के साथ आप पर भारतीय वेदान्त का भी प्रभाव है।

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूं।
दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ॥

उन्होने जहाँ कण २ मे असीम को देखा है वहाँ प्रकृति के विराट रूप के दर्शन भी किये है।

रवि शशि तेरे अवतंस लोल
सीमान्त; जटित तारक, अमोल
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्रधनुष
हिमकर बन झरते हैं स्वैदनिकर
अप्सरि? तेरा नर्तन सुन्दर।

महादेवी जी को अपनी लघुता पर और ससीम पर गर्व है। वे मानव की सीमा मे ही सीमाहीन को देखना चाहती है।

विश्व मे वह कौन सीमाहीन है
हो न जिसका खोज सीमा में मिला?
क्या रहोगे क्षुद्र प्राणो मे नही
क्या तुम्ही सर्वेश एक महान हो॥

आपकी विरह की आराधना बड़ी त्यागमयी है। वे अपने तप का फल मिलन में नही चाहती हैं। "कादू वियोगान्पल रोते सयोग

समय छिप जाऊँ, श्रीमती महादेवी की भाषा यद्यपि संस्कृति गर्भित है तथापि उनमे एक सरलता और प्रभावमयता है। आपने भी साहित्य और सङ्गीत का सुन्दर समन्वय किया है, आपके भावो मे छायावाद की सुकुमारता पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है।

आप आजकल के दुखवाद के कवियो मे से है। ये दुख मे ही शान्ति और सुख की रेखा पाते है।

इस दुख मे पाओगे सुख की धुँधली एक निशानी।
आहो के जलते शोलो मे, तुम्हे मिलेगा पानी॥

आपकी रचनाओ का सग्रह 'प्रेम-सङ्गीत' के नाम से निकला है।

भगवती चरण वर्मा (जन्म संवत् १९६०)

वर्माजी प्रगतिवाद की ओर भी झुके है। इस सम्बन्ध मे आपकी 'भैसा गाडी' ने विशेष ख्याति पाई है। वर्माजी की भाषा मे माधुर्य की अपेक्षा ओज की मात्रा अधिक है और कही-कही उसमे अग्रेजी मुहावरो का (जैसे नया अध्याय खोलना आदि) ज्यो का त्यो अनुवाद किया है।

आजकल के छायावादी कवियो मे रामकुमार वर्मा भी दुखवाद

राजकुमार वर्मा (जन्म संवत् १९६२)

के कवियो मे से है। आपके कई कविता-संग्रह निकल चुके है। उसमे अञ्जलि, अभिशाप निर्णय, रूप, राशि, चित्र रेखा प्रमुख है। आपके क्षणिक सुख मे दुख छुपा हुआ देखते है और प्रात: में भी सध्या की कालिमा और जीवन मे मृत्यु की छाप निहित पाते है।

फूल हाय ? विनने ही को खिला है फूल अनूप।
यह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप॥

आपकी रचनाओ मे निराशा है किन्तु उस निराशा के कारण आप अनीश्वरवाद की ओर नही जाते। आपकी कविता मे निराशा के साथ आशा की भी दीप्ति दिखाई देती है।

"रजिनी मलीन है, सजे किन्तु आशाओ के सुन्दर प्रदीप"

दिनकर जी बिहार के प्रमुख कवियों मे है। आपके कई कविता संग्रह निकल चुके है। उनमें मुख्य है–'रेणुका', 'रसवती', 'द्वन्द्वगीत' हुङ्कार' 'कुरुक्षेत्र' धूपछाह श्यामधेनी और 'बापू' आप पर राष्ट्रीयता की गहरी छाप है। आप पूँजी पतियो का शोपण नीति से वहुत दुखी है। आपने देश प्रेम के नाते प्रकृति का बडा सुन्दर चित्रण किया है। आपकी 'नगपति मेरे विशाल' शीर्षक कविता ने बड़ी ख्याति पाई है। 'कुरुक्षेत्र' आपकी नवीनतम कृति है किन्तु उसमे वर्णन की अपेक्षा युद्ध की मीमासा अधिक है। इसमे युद्ध के पक्ष और विपक्ष दोनो की ही युक्तियाँ है। इन राजनीतिक कविताओ के साथ आपने प्रेम की भी कविताएँ रसवती मे लिखी है आपकी भाषा मे विषयनुकूल ओज और माधुर्य का समावेश हुआ है किन्तु उसमे सरलता और सुवोधता सर्वत्र वर्तमान है।

रामधारी सिंह दिनकर (जन्म सन् १९०८)

उदाहरण :

विद्युत की इस चकाचौध मे देख, दीप की लौ रोती है।
अरी हृदय थाम महल के लिए झोपडी बलि होती है॥
देख कलेजा फाड कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारे।
बनती ही उन पर जाती है वैभव की ऊँची दीवारे॥

आपकी कविताएँ अधिकतर राष्ट्रीय हैं। आपने कुछ वात्सल्य रस प्रधान कविताएँ भी लिखी है। आपकी झाँसी की रानी, कविता शीर्षक ने बडी प्रसिद्ध पाई है। आपकी कविताएँ 'मुकुल' नाम के काव्य संग्रह मे एकत्रित हुई है। सभा के खेल शीर्षक सग्रह मे बालोपयोगी कविताएँ हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान, (जन्म सं० १९६१ स्वर्ग २००४)

आपकी भाषा सरल स्वाभाविक और जन हृदय को स्पर्श करने वाली है। देखिए अपनी बालिका की कैसी वात्यसल्यमयी झाकी देती है।

दीप शिखा है अन्धकार की, घनी घटा उजियाली।
ऊषा की यह कमल भृंग की, है पतझड़ की हरियाली।
कृष्णचन्द्र की क्रीड़ाओ को, अपने ही आँगन मे देखो।
कौशल्या के मातृ-मोद को, अपने ही मन मे लेखो॥

बच्चन

आपका पूरा नाम-हरिवंशराय 'बच्चन' है। आप हिन्दी मे 'हालावाद' के प्रवर्तक है। उसमे फारसी के कवि उमर खैयाम की छाया है। मधुशाला, निशा निमत्रण, सतरगिणी आदि आपके कई काव्य-सग्रह निकल चुके है। आप मे केवल पलायनवाद ही नही हैं। वे जीवन की कठोर वास्तविकता के लोहे के चने चबाने को भी तैयार है आपकी कविता मे विशेप तन्मयता है। आपकी भाषा बड़ी सरल मधुर और प्रवाहमय है।

हिन्दी कविता का क्षेत्र विस्तृत है। उसकी द्रुतगति से कदम मिलाकर चलना बडा कठिन कार्य है। इस युग में उसकी दो मूल धाराएँ है एक छायावादी जो गाँधीवाद से प्रभावित है और दूसरी प्रगतिवादी जो मार्क्सवाद से प्रभावित है। छायावाद और रहस्य-वाद के सम्बन्ध मे हम ऊपर लिख चुके हैं।

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

यद्यपि यह युग मुक्तक काव्य का है। तथापि इसमे भी कभी-प्रबन्ध काव्य के दर्शन हो जाते है। गुरु भक्तसिहजी ने नूरजहाँ, विक्रमादित्य नाम के दो प्रबंध काव्य लिखे हैं। भारतीय राष्ट्रीय

हिन्दुओ को और मुसलमानो की सभ्यता और संस्कृति मे भी बहुत कुछ काव्य की सामग्री दी है। जहाँगीर और नूरजहाँ के प्रेम में एक विशेष रोमास है जो अच्छे काव्य का विषय बन सकता था। प्रेम की लगन के अतिरिक्त इस काव्य की दो विशेषताये है, सुन्दर प्रकृति चित्रण हैं और मुहावरो का प्रयोग। मुहावरो के प्रयोग मे तो गुरुभक्तसिह जी पर कवि सम्राट हरिऔध जी का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है। एक उदहरण देखिये। नीचे

अब तक खूब उडाये है तूने आनन्द कबूतर
हाथो के तोते अब उडते कैसा कतर दिया पर
अब मेरी तूती बोलेगी नया खिलाऊँगी गुल
यह प्यारा सलीम हो जावेगा मुझ पर बुलबुल
उल्लू मुझे बनाने आई उडती मै पहिचानूँ
निकल जाय मेरे पजे से कोई तब मै जानूँ

इस उद्धरण मे जो मुहावरे आये है वे सब ही जगत से सम्बन्ध रखते है और प्रसग मे जँच गए हैं।

प्रगतिवाद

प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप है। हिंदी मे वह छाय-वाद के पलायनवाद (छाया मे भी अब पलायनवाद नही है, प्रसाद जी की कामायनी मनु को जीवन मे प्रवेश करने का उपदेश देती है) की प्रतिक्रिया मे आया। प्रगतिवाद वर्ग सघर्ष द्वारा वर्ग-हीन समाज के पक्ष मे है। इस वाद मे रोटी और अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को प्राथमिकता मिली है। श्री शिवमगलसिह 'सुमन' अञ्चल, नरेन्द्र आदि ने प्रगतिवाद के प्रभाव मे अच्छी कविताएँ लिखी है और भी कविताएँ जो खास प्रगतिवादी नही है प्रगतिवाद का प्रभाव है। किंतु कुछ कवि लोग घोर वस्तुवाद को अपना कर काव्य गौरव को खो बैठते है।

प्रगतिवाद की मूल प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है।

१ वस्तुवाद का प्राधान्य। शोषण और दरिद्रता का नग्न चित्रण।

२ समाज के रूढियो के प्रति विद्रोह।

३ पूँजीवाद का घोर विरोध और सर्वहारा का पक्ष समर्थन।

४ नारी स्वातन्त्र्य की माँग जिसमे पुरुषो के साथ समता का पोषण किया गया है। प्राचीन नैतिक बन्धनो के प्रति आग्रह का अभाव।

५--काव्य भाषा को जन भाषा के निकट लाने का आग्रह। छन्द के शास्त्रीय बन्धनो का शैथिल्य किन्तु कविता को लोक-रुचि के अनुकूल हृदयग्राही बनाने का प्रयत्न।

उपसंहार

कविता मे नए प्रयोग हो रहे है, अब तो प्रयोग मुक्तक काव्य के युग मे भी प्रबन्ध काव्य का ह्रास नही हुआ है। किंतु प्रबध काव्य मे अब स्थान स्थान पर प्रगीतत्व का समावेश हो रहा है। हमारे अधिकाश कवियो पर तो गाँधीवाद का प्रभाव है या मार्क्सवाद का कुछ कवि अपनी स्वतन्त्र राह खोज रहे हैं।

मुक्तक के क्षेत्र मे कवि लोग नई राह खोजने के प्रयोग कर रहे है अब तो प्रयोग को एक वाद का रूप दे दिया गया है। इसी वाद से प्रभावित होकर प्रयोगवादी कविता का चलन हो चला है इस प्रकार की कविता में नए नए अछूते भव्य, अभव्य दोनो प्रकार के विपयो पर नए नए उपमानो और नए नए ढङ्ग के साथ कवि की रुचि और उमङ्ग के अनुकूल जो कभी-कभी विकृत भी होती कविता के नये प्रयास किए जाते है। प्रयोगवाद किसी प्रकार के बन्धन स्वीकार नही करता।

कविता का सम्पर्क जीवन से तो अवश्य रहेगा किन्तु नितान्त वस्तुवादिनी न रहेगी प्रगतिवाद की कठोरता के छायावाद की कोमलता और वास्तविकता के साथ गम्भीरय और शालीनता को लाने का मार्ग श्रेयकर सिद्ध होगा। सत्य का प्रेय और श्रेय का प्रेय बनाने की आज भी माग है।